ISSN 2229-6328

भाग - त्रयस्त्रिंश : तृतीय खण्ड

ॐ

पावमानी

त्रैमासिक शोध पत्रिका

शतपथ ब्राह्मण में विविध विद्याएँ

ISSN 2229-6328

ओ३म्

प्रेरणास्रोत : प० पू० स्व० स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज

पावमानी

त्रैमासिकी मूल्याङ्किता वैदिक-शोधपत्रिका

भागः त्रयस्त्रिंश, तृतीय खण्ड (वि०सं० २०७६)

शतपथ ब्राह्मण में विविध विद्याएँ

प्रकाशक

स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान

गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी, भोला, मेरठ- २५०५०१

जुलाई २०१८ - सितम्बर २०१८ **मूल्य १००.००**

एक प्रति का मूल्य	...	१०० रु०
वार्षिक सदस्यता शुल्क	...	४०० रु०
आजीवन सदस्यता शुल्क	...	२००० रु०
आजीवन सदस्यता शुल्क (छात्रों हेतु)	...	१५०० रु०
आजीवन सदस्यता शुल्क (संस्था हेतु)	...	५००० रु०
सहयोगी सदस्यता शुल्क	...	५५०० रु०
संरक्षक सदस्यता शुल्क	...	१०००० रु०
परामर्शक सदस्यता शुल्क	...	११००० रु०

आभार

पावमानी के इस अङ्क का सम्पूर्ण व्ययभार आश्रम के प्रति एकनिष्ठ स्व० माता प्रकाशवती जी की प्रेरणा से रस्तौगी प्रकाशन, मेरठ, उ०प्र० ने वहन किया।

• स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक, मुद्रक
स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान
गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी
भोला, मेरठ- २५०५०१ (उ०प्र०)
दूरभाष : ८००६७०२५५१
अणुवाक् :pavamani86@gmail.com
जालपत्र : pavamani.in

• **पावमानी- ISSN २२२९-६३२८**
UGC पत्रिका सं० ४०९५२
भागः त्रयस्त्रिंश, तृतीय खण्ड
जुलाई २०१८ - सितम्बर २०१८

• प्राप्ति स्थान-
गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी, मेरठ

• मुद्रक
रस्तौगी प्रकाशन, मेरठ (उ०प्र०)

• प्रेरणास्रोत :
प०पू० स्व० श्री स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती

• प्रधान सम्पादक
स्वामी विवेकानन्द सरस्वती

• सम्पादक
प्रो० सोमदेव शतांशु
दूरभाष : ०९८३७६४७४२७

डॉ० वाचस्पति मिश्र
दूरभाष: ०९३१९००२४०२

• **कल्पादितः** १,९७,२९,४९१२० गते
• **सृष्टि आदितः** १,९६,५८,८५१२० गते
• **युगाब्द** ५१२१
• **दयानन्दाब्द** १९५

सम्पादकीयम्

विश्वकल्याण हेतु परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में विशुद्ध अन्तःकरण तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा के धनी ऋषियों को वेदज्ञान प्रदान किया। साक्षात्कृतधर्मा ऋषिपरम्परा वेदमन्त्रों के मर्म को सहजतया हृदयंगम करने में समर्थ थी। कालान्तर में जब लोग तप साधना आदि में न्यूनता के कारण वेदार्थ को समझने में असमर्थ हुए तब ब्राह्मण तथा वेदांगादि के द्वारा वैदिक गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित किया गया। इस श्रृंखला में ब्राह्मण ग्रन्थों का स्थान सर्वप्रथम है।

ब्राह्मण शब्द के विविध निर्वचन प्राप्त होते हैं। **ब्रह्मो वै वेदः तद्व्याख्यानि ब्राह्मणानि** अर्थात् वेद के व्याख्यानग्रन्थ ब्राह्मण कहलाते हैं। यद्यपि इस निर्वचन को वैयाकरण स्वीकार नहीं करते तथापि यह भाव ग्राह्य है। आचार्य सायण भी इस भाव को स्वीकार करते हुए तैत्तिरीय संहिता की भाष्यभूमिका में स्पष्ट लिखते हैं कि ब्राह्मण मन्त्रों के व्याख्यानरूप हैं- **ब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानरूपत्वान्मन्त्रा एवादौ समाम्नाता इति।** ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणों के द्वारा यागादि विधान का कथन होने से भी इन्हें ब्राह्मण कहा जाता है। महर्षि आपस्तम्ब भी ब्राह्मण ग्रन्थों को अग्निहोत्रादि कर्मकाण्डों का प्रतिपादक मानते हैं- **कर्मचोदनानि ब्राह्मणानि।**

इस प्रकार अग्निहोत्र एवं विविध सोमयागों के माध्यम से वेदमन्त्रों में निगूढ आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक भावों की व्याख्या प्रतिपादक ग्रन्थ ब्राह्मणग्रन्थ कहलाते हैं। विधि, अर्थवाद एवं उभयविध लक्षणता से ब्राह्मणग्रन्थों की त्रिविधता प्रतिपादित की गई है।

प्रत्येक वेद से सम्बद्ध भिन्न-भिन्न ब्राह्मणों का ज्ञान भण्डार अपने महर्षियों से उत्तराधिकार के रूप में हमें प्राप्त था, किन्तु अपने प्रमाद एवं विदेशी आक्रान्ताओं के अत्याचार के कारण कुछ ही ब्राह्मण ग्रन्थ आज हमारे समीप शेष हैं।

ऋग्वेद से सम्बद्ध ऐतरेय एवं शांखायन (कौषीतकि) ब्राह्मण, शुक्लयजुर्वेद की माध्यन्दिन शाखा से सम्बद्ध शतपथ ब्राह्मण एवं कृष्णयजुर्वेद से सम्बद्ध तैत्तिरीय एवं मैत्रायणी ब्राह्मण, सामवेद से सम्बद्ध षड्विंशब्राह्मण, ताण्ड्यब्राह्मण, सामविधानब्राह्मण, आर्षेय, दैवत, उपनिषद्ब्राह्मण, संहितोपनिषद्ब्राह्मण, वंशब्राह्मण, एवं जैमिनीय (तलवकार) ब्राह्मण तथा अथर्ववेद का गोपथब्राह्मण प्राप्य है।

उक्त ब्राह्मणों में अपने अपने वेद से सम्बद्ध ज्ञान, कर्मकाण्ड, उपासना एवं विविध वैज्ञानिक रहस्य विवृत हैं। ब्राह्मणग्रन्थों के उक्त ज्ञान विज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने के लिए स्वामी समर्पणानन्द वैदिक शोध संस्थान, प्रभात आश्रम में शतपथ ब्राह्मण को केन्द्रित कर एक शोध संगोष्ठी सम्पन्न हुई, जिसमें शतपथ ब्राह्मणगत विविध विषयों का विवेचन हुआ।

शतपथ ब्राह्मण आकार की दृष्टि से सभी ब्राह्मणग्रन्थों से बृहद्काय है। इसमें सौ अध्याय हैं अतः यह ग्रन्थ अन्वर्थनामा है। इसमें अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त समस्त गुणों का सांगोपांग वर्णन है तथा उन यज्ञीय कर्मकाण्डों का रहस्योद्घाटन भी किया गया है। इसका अन्तिम चौदहवाँ काण्ड बृहदारण्यक उपनिषद् नाम से सुप्रसिद्ध ब्रह्मविद्या का आकर ग्रन्थ है।

इस शतपथ ब्राह्मण के गहन विद्यारण्य में पूज्य स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती जी ने बहुत विचरण किया है तथा तीन काण्ड तक इसके भाष्य में शतपथ के ज्ञानमधु का संग्रह किया है। उनका मन्तव्य है- शतपथ ब्राह्मण

के यज्ञीय कर्मकाण्डों के माध्यम से शिक्षाशास्त्र, समाजशास्त्र, युद्धकला, राजनीति आदि को अभिव्यक्त किया गया है। उनका कहना है- यज्ञ के रहस्यों को समझने के लिए तीन बातों का ज्ञान आवश्यक है- मन्त्रों का अर्थ, यज्ञ की प्रक्रिया एवं मन्त्रार्थ और क्रिया का परस्पर सम्बन्ध। इन तीनों से शतपथ ब्राह्मण का स्वरूप निर्मित हुआ है। यह ग्रन्थ उपलक्षणों के द्वारा पूर्वापर सम्बद्ध व्याख्यान को स्पष्ट करने के कारण विश्वसाहित्य में अद्वितीय है। किन्तु दुर्भाग्य से पढ़ने पढाने की परम्परा विच्छिन्न हो जाने से इसी पवित्र ग्रन्थ के प्रमाणों से यज्ञ यागादि को पशुओं के रक्त से रंजित कर वेदोक्त अध्वरों को भी हिंसा से कलंकित कर दिया गया। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की वेदव्याख्यान शैली का अनुगमन करते हुए पूज्य स्वामी समपर्णानन्द सरस्वती जी ने शतपथ को समझने का एक नया मार्ग प्रशस्त किया है। उसका अनुसरण करते हुए जीवन को सुख शान्तिमय बनाने वाले हमारे विद्वज्जन महर्षि याज्ञवल्क्य की इस ज्ञाननिधि से ज्ञानविज्ञान के अनेक रत्न निकालकर विश्वकल्याण को सम्पादित करने में सहयोगी बन सकें, पावमानी के इस अंक का यही लक्ष्य था। सुधी पाठक अपने ज्ञान की इस थाथी को सम्भाल कर अपनी भावी पीढियों तक पहुँचाने के लिए प्रयत्न शील रहें। शतपथ के उपदेशों को हृदयंगम कर हम सर्वविध सुख समृद्धि एवं परमानन्द को प्राप्त कर सकें।

इन्हीं कामनाओं के साथ...

सोमदेव शतांशु

अनुक्रमणिका

शतपथ में क्या है ?

स्वामी विवेकानन्द सरस्वती

शतपथ ब्राह्मण यजुर्वेद का व्याख्यान ग्रन्थ है, ऐसा महर्षि दयानन्द जी का मन्तव्य है। परन्तु जब हम इस ग्रन्थ का आद्योपान्त पारायण करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि यह तो यज्ञों का व्याख्यान ग्रन्थ है, जिसमें अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त जितने यज्ञ हैं उनकी विशद व्याख्या है। इनकी व्याख्या में यह बतलाया गया है कि इनको कौन किस प्रकार करे तथा इनके करने का लाभ क्या है आदि; तो क्या पुनः महर्षि ने जो इसे यजुर्वेद का व्याख्यान ग्रन्थ कहा वह असत्य है अथवा उनकी मिथ्या कोरी कल्पनामात्र है। नहीं कदापि नहीं, इस उलझन को सुलझाने का रास्ता भगवान् पतञ्जलि ने बताया है **"व्याख्यानतो विशषप्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणम्"** अर्थात् संदिग्ध स्थलों का विशेष व्याख्यान कर लेना चाहिए। उन्हें यूं ही अन्यथा नहीं समझना चाहिये। वास्तव में संदेह का कारण यह है कि सामान्यतया लोग 'यज्ञ' शब्द का अर्थ अग्निहोत्रादि कर्म काण्ड लेते हैं, किन्तु यदि हम शब्द-शास्त्र के अनुसार इस शब्द का अर्थ जानने का यत्न करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि 'यज्ञ' का शाब्दिक अर्थ अग्निहोत्रादि कुछ भी नहीं। क्योंकि जिस यज् धातु से यज्ञ शब्द निष्पन्न होता है, उस धातु के तीन अर्थ हैं **“यज देवपूजा-संगतिकरण-दानेषु”** अर्थात् विद्वानों का सत्कार, संगतिकरण तथा दान देना, किन्तु इन तीन अर्थों में भी दो अर्थ देव पूजा और दान तो संगतिकरण अर्थ के ही उपोद्बलक हैं। क्योंकि जब कोई व्यक्ति अपने से बड़े का सत्कार करता है, या अपने से छोटों या बड़ों को कुछ दान देता है, उस आदान और प्रदान से पहले उसमें मेल होता है। तभी तो वह देता है दान के पश्चात् उसका फल भी संगतिकरण (मेल) ही होता है। यही बात पूजा में भी है। क्योंकि बिना मेल के सत्कार नहीं हो सकता। वैसे तो यज्ञ शब्द के अर्थ के विषय में किसी को संशय न रह जाये इसलिये शतपथ ने स्वयं कहा **“यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म”** अर्थात् श्रेष्ठ कर्म का ही

नाम यज्ञ है। धात्वर्थ तथा शतपथ के अनुसार यज्ञ का परिष्कृत और वास्तविक अर्थ हुआ **कोई भी श्रेष्ठ संगठित समारम्भ।** विभिन्न संगठित समारम्भों की ही व्याख्या शतपथ में यथास्थान की गई है। इन्हीं संगठित समारम्भों की अश्वमेधादि संज्ञा है। इन अश्वमेधादि यज्ञों के रहस्य को समझने के लिये तीन बातों के ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है।

(१) मन्त्रों का अर्थ।

(२) यज्ञ की प्रक्रिया।

(३) मन्त्रार्थ और क्रिया का परस्पर सम्बन्ध।

इन तीनों के मेल से ही शतपथ ब्राह्मण बना है। मन्त्रार्थ और यज्ञ की प्रक्रिया के परस्पर सम्बन्ध को समझाने के लिए महर्षि याज्ञवल्क्य को मन्त्रार्थ भी दर्शाने पड़े, क्योंकि मन्त्रार्थ के दर्शाये बिना यज्ञ क्रियाओं का समझना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव-सा हो जाता। अतः मन्त्र-क्रियाओं की व्याख्या के निमित्त से मन्त्रों की व्याख्या अपने आप हो गई। इसीलिये महर्षि दयानन्द जी ने शतपथ को यजुर्वेद का व्याख्यान ग्रन्थ माना है, वह ठीक है। उसमें संशय के लिये अवकाश नहीं।

किन्तु आखिर शतपथ ब्राह्मण को किस प्रकार समझा जाये ? यह एक पहेली है, यह एक समस्या है जिसको न समझ कर मध्यकालीन मीमांसकों ने वेद की जो दुर्गति की उसके स्मरणमात्र से ही हृदय कांप उठता है और शरीर रोमांचित हो जाता है। **'अस्तु प्रकृतमनुसराम'** शतपथ को समझने के लिये पहले यह आवश्यक है कि ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना को समझ लिया जाय। ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना को समझने के लिये यह आवश्यक है कि कल्प सूत्रों को समझ लिया जाये। वेद के छः अङ्गों में एक का नाम कल्प क्यों है ? वेद की शिक्षाओं को घर-घर में पहुँचाने के लिए ऋषियों ने कुछ नाटकों की कल्पना की, जिनमें वेद की शिक्षाओं को स्थूल रूप दिया गया। इसका प्रमाण यह है कि भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है **'यजुर्वेदादभिनयम्'** अर्थात् मैंने अभिनय की विद्या यजुर्वेद से ली है। परन्तु इन वैदिक नाटकों में तथा भरत मुनि के प्रचलित लौकिक नाटकों में गहरा भेद है। वह यह कि वैदिक नाटकों में अभिनेता का काम अग्नि, जल आदि जड़ पदार्थों से लिया गया। **ये पदार्थ प्रतीक कहलाते हैं और जिस सूक्ष्म भाव का वे अभिनय करते हैं वह इन प्रतीकों का प्रत्यायनीय कहलाता है।** इसलिये वैदिक नाटकों का नाम प्रतीक

नाटक है। अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त जितने यज्ञ हैं उनका ही नाम प्रतीक नाटक है और इन प्रतीकों का प्रत्यायनीय कोई न कोई वेदमन्त्रों का एकदेश है। जब तक मन्त्रों का अर्थ न जाना जाय तब तक केवल प्रतीकों से कुछ भी समझ में नहीं आ सकता, ब्राह्मण ग्रन्थ का काम है प्रत्येक प्रतीक का प्रत्ययनीय से क्या सम्बन्ध है स्पष्ट करके बताना। इसलिये प्रतीकों का अर्थ बताने के लिये महर्षि याज्ञवल्क्य ने पहले मन्त्रार्थ किया। उसके पश्चात् अपने कल्प सूत्र की प्रक्रिया का अर्थ किया। कल्प सूत्र की प्रक्रियायों को याज्ञवल्क्य के शिष्य ने ग्रन्थ रूप दिया, वस्तुतः वह भी याज्ञवल्क्य का ही ग्रन्थ है, परन्तु 'कात्यायन श्रौत सूत्र' कहा जाता है।

जब तक हम प्रत्येक प्रतीक का प्रत्यायनीय क्या है यही नहीं समझ पाते, तब तक लाख कोशिश करने पर भी शतपथ हमारी समझ से बाहर है, एक जन्म में ही नहीं किन्तु करोड़ों जन्मों में भी हम भगवती श्रुति के हृदय मन्दिर में प्रवेश करने के अधिकारी नहीं बन सकते। अतः प्रतीकों का प्रत्यायनीय क्या है यह जानना उतना ही आवश्यक है जितना जीने के लिए प्राण वायु का। स्थूल प्रतीकों के पीछे जो सूक्ष्मभाव उन प्रतीकों का प्रत्यायनीय है वह समझ में नहीं आता तब तक यह कहना कि मैंने शतपथ को समझ लिया है कोरा दम्भ होगा एवं संस्कृति के प्रति घोर अन्याय होगा, अक्षम्य अपराध होगा।

मैं यहाँ शतपथ का सामान्य परिचय देता हूँ जिससे पाठकों को इस ग्रन्थ का आभास मिले। यह ग्रन्थ १४ काण्डों में विभक्त है जिनमें प्रत्येक काण्ड की विषय सूची निम्नलिखित है-

प्रथम काण्ड = दर्श पौर्णमास याग

द्वितीय काण्ड = अग्न्याधान, अग्निहोत्र, उप-स्थान, पिण्ड-पितृ यज्ञ, आग्रायण, दाक्षायण, वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध, महाहव त्र्यम्बक याग, शुनासीर्य।

तृतीय काण्ड = सोमयाग

चतुर्थ काण्ड = सोमयाग

पञ्चम काण्ड = वाजपेय राजसूय

षष्ठ काण्ड = वाजपेय राजसूय

सप्तम काण्ड = वाजपेय राजसूय

अष्टम काण्ड = चयन विद्या
नवम काण्ड = चयन विद्या
दशम काण्ड = अग्निरहस्य
एकादश काण्ड = यज्ञरहस्य
द्वादश काण्ड = सौत्रामणि
त्रयोदश काण्ड = अश्वमेध
चतुर्दश काण्ड = बृहदारण्यकोपनिषद् अर्थात् ब्रह्मविद्या

शतपथ ब्राह्मण, पौर्णमासयाग से ही आरम्भ होता है। इस यज्ञ में राष्ट्र के लिये बालक उत्तम कैसे तैयार किया जाय? यह बात पुरोडाश के प्रतीक द्वारा बताई गई है, जिस बालकरूपी अष्टमी-चन्द्र को दम्पती ने प्राप्त किया उसकी शारीरिक मानसिक उन्नति करके उसे पौर्णमास का चन्द्र कैसे बनाया जाय, जिससे वह समाज या राष्ट्र यज्ञ में आहुति के योग्य हो सके, बाद में वेदि वर्णन के माध्यम से स्नातकों का वर्णन किया गया, माता-पिता गर्भाधान से पूर्व कैसी तैयारी करें, कैसे ग्रन्थ पढ़ें, किस प्रकार का आहार व्यवहार करें, तथा स्नातकों और स्नातिकाओं का विवाह किस अवस्था में करना चाहिये, पश्चात् क्या कार्य देना चाहिये इसका विशद वर्णन है। मुख्यरूपेण बालक के उत्तम मस्तिष्क निर्माण की विधि इसमें बतलाई गई है इसलिये इसे पौर्णमास याग कहते हैं, क्योंकि अपूर्ण बालकरूपचन्द्र को पूर्णचन्द्र कैसे बनाया जाय, यही बताया गया है।

बालक उत्पन्न होने के पश्चात् नये गर्भाधान के पूर्व के काल को दर्शयाग या अमावस्या का याग कहते हैं क्योंकि इस समय बालक रूपी चन्द्र के दर्शन नहीं हो रहे हैं। बालक उत्पन्न होने के पश्चात् माता-पिता के अन्दर जो एक क्षीणता-सी आ जाती है उसे किस प्रकार से दूर किया जाय, इसका विस्तृत वर्णन है। क्षीण अवस्था को पुनराप्यायित करने के लिये शारीरिक अवस्था का जितना ध्यान दिया गया है उससे कई गुना मानसिक अवस्था का ध्यान रखा गया है, इससे ही पता लगता है कि महर्षि याज्ञवल्क्य आने वाली सन्तति के निर्माण तथा सर्वांगीण विकास का कितना ध्यान रखते थे। आखिर इतना भी ध्यान क्यों न रखते, क्योंकि भावी राष्ट्र और समाज का निर्माण तो इन्हीं भावी सन्तानों को करना है, जो स्वयं निर्मित नहीं वह दूसरे का क्या निर्माण करेगा - महर्षि याज्ञवल्क्य सरीखें तत्त्ववेत्ता महाविद्वान् इस भू पर रहे और

उनकी वैज्ञानिकता तथा मनोवैज्ञानिक दर्शपौर्णमास यज्ञ पद्धति का यत्र-तत्र सर्वत्र घर-घर में प्रसार एवं प्रचार था, तभी भारत माँ ने अश्वपति जैसे चरित्रवान् सम्राट् को पैदा किया जिसने घण्टाघोष पूर्वक कहा कि

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्नि नाऽविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः॥

अर्थात् मेरे राज्य में न कोई चोर है, न कदर्य है, न शराबी है, न कोई ऐसा व्यक्ति है जो दैनिक यज्ञ न करता हो तथा कोई मूर्ख और व्यभिचारी पुरुष नहीं है तो पुनः दुराचारिणी स्त्रियां कैसे हो सकती हैं?

धन्य हो याज्ञवल्क्य तथा तुम्हारा ग्रंथ रत्न शतपथ? तुम्हारा अद्भुत पाण्डित्य तुम्हारी अलौकिक प्रतिभा तथा वैज्ञानिक सूझ-बूझ निराली है। तुम्हारे इस ग्रन्थ रत्न के रहस्य का पता जिस दिन विश्व के विद्वानों को लगेगा उसी दिन तुम्हारी विलक्षण प्रतिभा पर अखिल विश्व के मनीषी विस्मित और आश्चर्यचकित होकर दांतों तले अंगुली दबायेंगे।

परम पूज्य गुरुवर्य स्वामी समर्पणानन्द जी (भू०पू० बुद्ध देव विद्यालंकार जी) ने इस ग्रन्थ रत्न पर अनुपम भाष्य किया है। इस भाष्य को पढ़ने से पूर्व जो ग्रन्थ रत्न आज तक कराहते हुए पशुओं के रुधिर मांस और लहू से लथपथ था। अब वह समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र तथा अध्यात्म विद्या का अमूल्य भण्डार बनकर चमक उठेगा।

इति शम्।

शतपथ प्रतिपादित अग्निहोत्र

प्रो० कन्हैयालाल पाराशर[१]

आधिदैविक जगत् में पृथिवी के ऊपर अग्नि का आधान हो चुकने के बाद जब मानव का जन्म होता है तो सर्वप्रथम दिन और रात की परिवर्तन रूप स्थिति उसके अनुभव में आती है। यह तो इस आधिदैविक जगत् की सबसे छोटी परन्तु अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। इस प्रकार अध्यात्म में भी यही दिन और रात का चक्र जागृत और सुषुप्ति (जागना और सोना) रूप में होता है। ये दोनों आधिदैविक और आध्यात्मिक जगत् की स्वाभाविक परिणति है। इसी तत्त्व की व्याख्या ऋषियों ने अग्निहोत्र के रूप में की हैं। जिस प्रकार आधिदैविक जगत् में अहोरात्र (दिन और रात) का कालविभाजन सबसे छोटा है उसी प्रकार श्रौत कर्मों का प्रतिनिधि रूप अग्निहोत्र कर्म भी सबसे छोटा है। जिस प्रकार मनुष्य अहोरात्र का अनुभव जीवनभर किया करता है उसी के अनुकरण पर अग्निहोत्र का अनुष्ठान भी जीवन पर्यन्त यथाशक्ति करने का विधान है। यह शबर स्वामी ने किसी लुप्त ऋग्वेदीय ब्राह्मण ग्रन्थ का- **'यावज्जीवनम् अग्निहोत्रं जुहोति'** (जीवन पर्यन्त अग्निहोत्र करे) यह वचन मीमांसा के २,४,१ के भाष्य में उद्धृत किया है। शतपथ ब्राह्मण में भी तो अग्निहोत्र को 'जरामर्य सत्र' कहा है। अग्निहोत्र से यजमान तभी मुक्त होता है जब वह जरा (बुढ़ापे से) अत्यन्त शिथिल शरीर हो जावे अथवा उसका शरीर मृत्यु को प्राप्त हो जाए- **एतद्वै जरामर्यं सत्रं यदग्निहोत्रं, जरया ह वा एतत्स्मान्मुच्यते मृत्युना वा** (शतपथ ब्राह्मण में १४ काण्ड २०० अध्याय ४३८ ब्राह्मण और ७६२४ कण्डिकाएं

[१] **भारत-भारती अनुशीलन, संस्थान, पञ्जाब वि०वि० होशियारपुर, चण्डीगढ**

हैं)। अत एव इसके सन्दर्भों का निर्देश ४ संख्याओं में हुआ है। सम्पूर्ण शतपथ में अधिकांश रूप में यज्ञों का विस्तार से वर्णन मिलता है। यज्ञ के गुरुतम रहस्यों का विराट रूप में वर्णन शतपथ में मिलता है। प. भगवद्दत्त जी का कथन है कि - "जो अध्येता शतपथ पढ़ लेता है, वह याज्ञिक क्रिया का सर्वश्रेष्ठ पंडित कहा जाता है। शतपथ में वेदार्थ की कुञ्जी है। यह अभूतपूर्व ग्रन्थ है। वैदिक साहित्य का सर्वोपरि ग्रन्थ बिना किसी सन्देह के ऋग्वेद है। किन्तु इसके तुरन्त बाद यदि किसी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का नाम लिया जा सकता है तो वह है शतपथ ब्राह्मण। वैदिक संस्कृति की सतत प्रवह्यमान सरिता को अपनी जीवन धारा से परिपालित करने वाला यदि कोई एकाकी प्रेरक ग्रन्थ है तो वह निश्चय ही शतपथ ब्राह्मण है। यजुर्वेद भाष्य के प्रणयन में महर्षि दयानन्द ने शतपथ ब्राह्मण को सबसे अधिक सम्मान प्रदान किया है। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने ग्रन्थ व्याख्यान के साथ शतपथ व्याख्यान का संकेत देना भी अनिवार्य समझा- **अयं मन्त्रः शथपथे व्याख्यातः।** ऐसे प्रत्येक मन्त्र के भाष्य के अन्त में पते-सहित लिखित है। इतना ही नहीं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में ऋषि ने बार-बार अनेक बार इस ब्राह्मणग्रन्थ के सत्य ग्रन्थ के विशेषण से विभूषित करके शतपथ व्याख्यान के प्रति अपनी गहन आस्था प्रकट की है। डा० सम्पूर्णानन्द के अनुसार शतपथ कर्मकाण्ड की विधि बतलाने वाला न होकर प्राचीन भारतीय संस्कृति और दर्शन का भी दिग्दर्शन कराता है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में शतपथ का स्थान सबसे ऊंचा है। शतपथ ब्राह्मण में अग्निहोत्र के स्वरूप निरूपण से पूर्व यज्ञों का सामान्य संक्षिप्त नाम संकेत-पूर्वक देना प्रासङ्गिक ही होगा। श्रीमद्भगवद्गीता में द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ज्ञानयज्ञ इन कई प्रकार के यज्ञों का उल्लेख हुआ है। अग्निहोत्र एक द्रव्ययज्ञ है। जिन यज्ञों में देवता के निमित्त घृत तथा अन्यान्य द्रव्यों, पदार्थों का अग्नि आदि में समर्पणभाव से श्रद्धा से त्याग किया जाता है। वे सब द्रव्ययज्ञों की कोटि में आते हैं। द्रव्ययज्ञ श्रौत और स्मार्त भेद से अनेक प्रकार के होते हैं। जिन यज्ञों का संहिता (मन्त्रों) और ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णन मिलता है, वे श्रौतयज्ञ हैं। स्मार्त यज्ञ वे

हैं- जिनका ऋषियों ने स्मृतियों में विधान किया है। इन दोनों प्रकार के यज्ञों के भी नित्य, नैमित्तिक और काम्य भेद से अनेक प्रकार हैं। नित्य यज्ञ वे हैं जिन्हें नित्य प्रति अवश्य करना होता है। अग्निहोत्रादि नित्य यज्ञ हैं। नैमित्तिक वे हैं जो प्राकृतिक उत्पातों अथवा पूर्व जन्म-कृत कर्मों के दुष्परिणामों से मुक्ति के लिये रामबाण होते हैं। काम्य यज्ञ किसी इच्छा की पूर्ति हेतु किये जाते हैं यथा पुत्रेष्टि यज्ञ।

ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा श्रौतसूत्रों में जिन यज्ञों का विधान किया गया है, उनमें अग्न्याधान, अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, चातुर्मास्य, वाजपेय, राजसूय, अग्निचयन, सत्र, अश्वमेध, सौत्रामणि आदि प्रमुख हैं। गौतम ऋषि ने जिन सात हविर्यज्ञों का उल्लेख किया है, उनमें से अग्निहोत्र दूसरे स्थान पर है। अग्न्याधेय के सायंकाल से ही गृहस्थ को अग्निहोत्र करने का विधान है। अग्निहोत्र प्रातः एवं सायंकाल दो बार जीवन पर्यन्त या सन्यासी होने तक अथवा यथा शतपथ ब्राह्मण का निर्देश है कि जीवन पर्यन्त करने का विधान है।

अग्निहोत्र-नामकरण- अग्निहोत्र शब्द का अर्थ है- **अग्नये हूयते अस्मिन् तद् अग्निहोत्रम्** अर्थात् जिस कर्म में अग्नि के लिये होम किया जाता है वह अग्निहोत्र यज्ञ है। इसी को वामन शिवराम आदि ने संस्कृत हिन्दी कोश में इस प्रकार परिभाषित किया है- अग्निहोत्रम्- अग्निमें आहुति देना, होम की अग्नि को स्थापित रखना और उसमें आहुति देना। अग्निहोत्र करने वाला या वह व्यक्ति जो अग्निहोत्र द्वारा अग्नि को सुरक्षित रखता है (वह अग्निहोत्री कहलाता है)।

म० म० पं० युधिष्ठिर मीमांसक का कथन है कि यद्यपि अग्निहोत्र कर्म के दो देवता हैं- सायंकालीन कर्म का अग्नि और प्रातःकालीन कर्म का सूर्य। तथापि इस होम कर्म का आरम्भ सायंकाल से होता हैं। रात्रि का देवता अग्नि है। मानव रात्रि में अग्नि के सहारे ही कार्य करने में समर्थ होता हैं । इस कारण उभयकालीन कर्म की संज्ञा अग्निहोत्र है। इसमें छत्रिन्याय का दृष्टान्त दिया जाता है, जैसे- किसी समुदाय में एक व्यक्ति के हाथ में छाता होने पर पूरे समुदाय को उससे विशेषित करके "**छत्रिणो यान्ति**" का व्यवहार छत्रिन्याय कहाता है। यहाँ भी सायंकाल के होम का अग्नि देवता है और प्रातःकाल के होम का देवता सूर्य। दोनों देवता वाले कर्म को

अग्नि से विशेषित करके अग्निहोत्र नामकरण किया है। इस अग्निहोत्र का आरम्भ सायंकाल से होने के कारण अग्नि की प्रधानता है। छत्रिन्याय से अग्नि और सूर्य दोनों का बोध हो जाता है। अत एव अग्निहोत्र यह नामकरण उचित ही है।

अग्निहोत्र का संक्षिप्त विधि विधान-

यह ध्यान देने की बात है कि हविर्यज्ञो में अग्निहोत्र तथा सोमयज्ञों में अग्निष्टोम प्रकृति यज्ञ होने के कारण दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। अग्निहोत्र का निरूपण शतपथ ब्राह्मण में दूसरे काण्ड में द्वितीय अध्याय के चतुर्थ ब्राह्मण से आरम्भ होता है। प्रातःसायं अग्नि में दूध की आहुति डाली जाती है। इसमें गौण रूप में जौं, चावल, दही अथवा घी की आहुति का भी विकल्प है। अग्निहोत्र प्रातःकाल सूर्योदय के पहिले तथा सायंकाल सूर्यास्त के तुरन्त बाद सम्पन्न किया जाना चाहिये। अग्निहोत्र के काल के विषय में मनुस्मृतिकार का कथन है-

उदितेऽनुदिते चैव समस्याध्युषिते तथा।
सर्वथा वर्त्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥

यहाँ पर उचित काल का अभिप्राय है- जब सूर्योदय हो जाए। अनुदितकाल वह होता है, जब सूर्योदय के पूर्व नक्षत्रों का दर्शन सुलभ हो तथा समयाध्युषित काल वह होता है जब नक्षत्र लुप्त हो जाए और सूर्य का उदय भी न हो पावे। यथा-

तथा प्रभातसमये, नष्टनक्षत्रमण्डले।
रविर्यावन्न दृश्यते समयाध्युषितं हि तत्॥

न्याय दर्शन के वात्स्यायन भाष्य में तो- **उदिते होतव्यम्, अनुदिते होतव्यम्, समयाध्युषिते होतव्यम्।** इन तीनों कालों में अग्निहोत्र करने का विकल्प है। पं० युधिष्ठिर मीमांसक का कथन है कि जिन शाखाओं और ब्राह्मणों में समयाध्युषित काल में भी अग्निहोत्र का विधान था वे सम्प्रति लुप्त हो गये हैं। अब तो ब्राह्मणों में उदित और अनुदित दो ही मान्य हैं। अग्निहोत्र आरम्भ करने से पूर्व यजमान को यह संकल्प करना होता है कि वे उक्त तीनों सूर्योदय से पूर्व सूर्योदय से पश्चात् अथवा समयाध्युषितकाल में से कौन से काल में अग्निहोत्र किया करेगा। संकल्प कर लेने के बाद काल का उल्लङ्घन करने पर तो उसे प्रायश्चित्त करने का विधान है। अग्निहोत्र करने वाले के घर सभी देवता पहुंच जाते हैं। सूर्यास्त होने पर दी गयी आहुतियां इन

सभी आये हुए देवताओं को प्राप्त हो जाती है। सूर्योदय से पूर्व आहुति देने का प्रयोजन यह है कि देवों को निर्गमन से पूर्व आहुतियां दे दी जावें। आचार्य आसुरि के मत में सूर्योदय के पश्चात् आहुति देने वाले का अग्निहोत्र व्यर्थ में ही जाता है। तभी तो शतपथ ब्राह्मण में सूर्य को ही अग्निहोत्र कहा है।

अग्निहोत्र की फलश्रुति- शतपथ ब्राह्मण के अनुसार अग्निहोत्री कभी नष्ट नहीं होता। माता पिता के समान इस यजमान को सुखप्रद पुनर्जन्म मिल जाता है। दृष्टान्त दिया गया है कि प्रजापति ने आहुतियां देकर स्वयं को पुनः उत्पन्न कर लिया था। इसी तरह अग्निहोत्री भी प्रजारूप में स्वयं को उत्पन्न कर लेता है। विजयलाभ स्वर्गलोक की प्राप्ति एवं प्रजोत्पत्ति अग्निहोत्र के प्रयोजन है। किन्तु प्रजोत्पत्ति का ही इस यज्ञ से विशेष सम्बन्ध है। मैत्रायणी संहिता में उल्लेख मिलता है कि प्रजापति ने अग्निहोत्र द्वारा सात ग्राम्य पशु और छः ऋतुएं उत्पन्न कीं। याज्ञवल्क्य ने तो इसे पाकयज्ञ के तुल्य माना है। अग्निहोत्र सतत चलता रहता है जबकि अन्य यज्ञों की स्थिति ऐसी नहीं होती है। अग्निहोत्र के अनुष्ठान को करने वाला पापमुक्त हो जाता है। अग्निहोत्र तो यजमान को स्वर्ग ले जाने वाली नौका के समान है।

अग्निहोत्र प्रकृति यज्ञ होने के कारण अन्ययज्ञों की कल्पना का मूल श्रौत है। तभी तो डा० पोतदार का मानना है कि यज्ञ का विकास व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर हुआ है। यदि यजमान को सपरिवार कहीं देशान्तर में जाना पड़े तो गार्ह्यपत्यादि अग्नियों का अरणियों में आरोप करके नियत स्थान पर पहुंच कर अरणि मन्थन से अग्नियों को सिद्ध करके पहिले की तरह अग्निहोत्र करें। यदि अकेला हि जावे तो उसके अभाव में यजमान-पत्नी अथवा अध्वर्यु अथवा शिष्य ही अग्निहोत्र सम्पन्न करें। इस विषय का शतपथ ब्राह्मण में और भी विस्तार से निर्देश पाया जाता है। पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने तो संक्षेप में, तो भारतरत्न पाण्डुरंग वामन काणे ने धर्मशास्त्र का इतिहास में विस्तारपूर्वक आश्वलायन और कात्यायन के सन्दर्भपूर्वक वहिर्गमन की स्थिति में अग्निहोत्र की निरन्तरता बनायें रखने के निर्देश दिये हैं।

उपसंहार में यही कहना है कि निरुक्त और व्याकरण के विद्वान् भी संहिता-वेद का चतुर्थांश जान पाये हैं। अधिकांश आधुनिक विद्वान् इस कोटि के हैं। आज भी जो ब्राह्मण ग्रन्थों के व्याख्याता हैं और पदवाक्य प्रमाणज्ञ हैं, ब्राह्मणों की

शब्दरीति को समझते हैं, वे ही शतपथादि के अग्निहोत्रादि प्रकरणों को सम्यक् रूप से समझ सकते हैं। कुछ ऐसा ही वैंकट माधव का कथन है-

संहितायास्तुरीयांशं विजानन्त्यधुनातना।
निरुक्तव्याकरणयोरासीद् येषां परिश्रमः॥
अथ ये ब्राह्मणार्थानां विवेक्तारः कृतश्रमाः।
शब्दरीतिं विजानन्ति ते सर्वं कथयन्त्यपि॥

शतपथ ब्राह्मण में शिक्षा का स्वरूप तथा स्वामी दयानन्द की शिक्षा नीति

प्रो० मनुदेव बन्धु[१]

शतपथ ब्राह्मण का परिचय- ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार ब्रह्म शब्द का अर्थ मन्त्र है।[२] अतः वेद मन्त्रों की व्याख्याओं और विनियोग प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ को ब्राह्मण कहा जाता है। शतपथ के अनुसार ही ब्रह्म शब्द का दूसरा अर्थ यज्ञ है।[३] अतः यज्ञों की व्याख्या और विवरण प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थ को ब्राह्मण कहते हैं। ब्राह्मण शब्द का एक अन्य अर्थ है- पवित्र ज्ञान या रहस्यात्मक विद्या। अतः जिन ग्रन्थों में वैदिक रहस्यों का उद्घाटन किया है, उन्हें ब्राह्मण कहते हैं। इन ग्रन्थों में यज्ञों का आध्यात्मिक, आधिदैविक और वैज्ञानिक स्वरूप प्रस्तुत किया गया है-

हेतुर्निवचनं निन्दा प्रशंसा संशयो विधिः।
परक्रिया पुराकल्पो व्यवधारण-कल्पना।
उपमानं दशैते तु विधयो ब्राह्मणस्य वै।[४]

मीमांसा दर्शन के भाष्य में शबर स्वामी ने ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रतिपादन विषयों में हेतु, निर्वचन, निन्दा, प्रशंसा, संशय, विधि, परक्रिया, पुराकल्प, व्यधारणकल्पना और उपमान का परिगणन किया है।

शतपथ ब्राह्मण ब्राह्मणग्रन्थों में मूर्धन्य है। विषय विवेचन और आकार की दृष्टि से इसे प्रथम स्थान प्राप्त है। यागानुष्ठान के विस्तृत विवेचन के कारण इसको

---

[१] **आचार्य, वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार**

[२] ब्रह्म वै मन्त्रः। शतपथ ब्रह्मण ७/१/१/९

[३] ब्रह्म वै यज्ञः। शतपथ ब्रह्मण ३/१/४/१५

[४] मीमांसा दर्शन २/१८ शाबर भाष्य

सबसे अधिक ख्याति प्राप्त है। इसके रचयिता वाजसनि के पुत्र याज्ञवल्क्य माने जाते हैं। वाजसनि के पुत्र होने के कारण इन्हें वाजसनेय कहा जाता है। शतपथ ब्राह्मण के अन्त में इसका स्पष्ट उल्लेख है कि सूर्य की कृपा से प्राप्त शुक्ल यजुर्वेद की व्याख्या वाजसनेय याज्ञवल्क्य ने की है- **आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषि वाजसनेयेन याज्ञवल्क्येन आख्यायन्ते।**[५]

शतपथ में सौ अध्याय हैं। अतः इसे शतपथ कहा जाता है। इसकी व्याख्या गणरत्नमहौदधि आदि ने की है-'**शतं पन्थानो मार्गा नामाध्याया यस्य तत् शतपथम्**' जिसमें सौ अध्यायरूपी मार्ग हैं उसे शतपथ कहते हैं। काण्व शतपथ में यद्यपि १०४ अध्याय है, तथापि शतसंख्या के महत्त्व के कारण इसे शतपथ ही कहा जाता है। यह माध्यन्दिन और काण्व दो शाखाओं में उपलब्ध है। वास्तव में वेद में वर्णित यज्ञ भागों की व्यख्या ही शतपथ ब्राह्मण में है।

शिक्षा का स्वरूप- ज्ञान की दो धारा आदि काल से चली आ रही हैं। कर्मकाण्ड के अन्तर्गत ब्राह्मण ग्रन्थ और ज्ञान काण्ड के अन्तर्गत उपनिषद् ग्रन्थ आते हैं। शिक्षा शब्द का प्रयोग शतपथ ब्राह्मण[६] और तैत्तिरीयोपनिषद्[७] में मिलता है। जिसका अर्थ सीखना है। शिक्षा शब्द '**शिक्ष विद्योपादाने**' धातु से निष्पन्न होता है। पाणिनि ने विद्याप्राप्ति के अर्थ में शिक्षा को स्वीकार किया गया है। शिक्षा से ही मानव रोटी, कपड़ा और मकान के साथ मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। ईशोपनिषद् के अनुसार '**विद्ययामृतमश्नुते**'[८] विद्या से अमृत की प्राप्ति होती है। अचार्य शंकर के अनुसार जिससे वर्णादि का उच्चारण सीखा जाये अथवा जिससे वर्ण आदि सीखे जायें वह शिक्षा है।[९] ब्राह्मणकाल में केवल वर्णादि की शिक्षा नहीं दी जाती थी अपितु तत्कालीन शिक्षा में क्षमा, दान, दया सदृश आत्मिक गुणों के विकास का प्रावधान भी सन्निविष्ट था।[१०] स्वाध्याय और प्रवचन से प्रमाद न करने का विधान व्यक्ति को

---

[५] शतपथ ब्रह्मण १४/९/४/३३

[६] शिक्षेद् दमं दानं दयामिति। शतपथ ब्रह्मण १४/५/२/३

[७] शीक्षां व्याख्यास्यामः। तैत्तिरीयोपनिषद् १/२/१

[८] ईशोपनिषद् १४ तथा यजुर्वेद ४०/१४

[९] तैत्तिरीयोपनिषद् १/२/१ शांकर भाष्य

[१०] बृहदारण्यकोपनिषद् ५/२/३

उच्छृंखल नहीं करता था। '**स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्**'।[११] तत्कालीन शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया थी जो जीवन पर्यन्त चलती रहती थी। इसकी पूर्णता तब होती थी जब व्यक्ति आत्म साक्षात्कार कर लेता था।[१२]

धार्मिक जीवन- अचार्यकुलों में यज्ञ-यागादि निरन्तर होते रहते थे। अतः शिष्यों को याज्ञिक परम्परा से अवगत कराया जाता था। देवकार्य और पितृ कार्य[१३] से प्रमाद न करने का उपदेश भी इस बात का द्योतक है कि जीवन में जिन देवतत्त्वों से प्रकाश तथा ज्ञान प्राप्त होता है, उनको विस्मृत न किया जाये। बड़े-बड़े यज्ञों के समारोह में आचार्य शिष्यों को भी ले जाया करते थे।[१४] आवश्यकता पड़ने पर वे इन कार्यों में सहयोग भी प्रदान करते थे। याज्ञवल्क्य अपने शिष्यों को जनक राजा के यहाँ आयोजित यज्ञ के अवसर पर अपने साथ ले गये थे। धार्मिक दृष्टि से समुन्नत करने हेतु शिष्यों को धर्माचरण का उपदेश दिया जाता था। उनसे अपेक्षा की जाती थी कि वे धर्म से प्रमाद न करें।[१५]

साहित्य- शतपथ ब्राह्मण कालीन समाज में साहित्य मौखिक ही था। वाक् परम्परा से ही इनका सम्बर्धन होता था। वाक् तत्त्व की महिमा उपनिषदों में अनेक प्रकार से वर्णित है। वाक् से बढ़कर विज्ञान को महत्त्व दिया गया है।[१६] विभिन्न अवसरों पर स्तोत्र का पाठ होता था।[१७] तत्कालीन समाज में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान और अनुव्याख्यान आदि का उच्चकोटि के साहित्यों में महत्त्वपूर्ण स्थान था। इसके साथ यह भी मान्यता थी कि ये सभी साहित्य प्रभु की देन हैं।[१८]

---

[११] तैत्तिरीयोपनिषद् १/११/१

[१२] बृहदारण्यकोपनिषद् एक दार्शनिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, प्रो० मनुदेव बन्धु, नवम अध्ययन

[१३] देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। तैत्तिरीयोपनिषद् १/११/२

[१४] याज्ञवल्क्य त्वयमेव ब्रह्मचारिणमुवाचैता गाः सोम्योदज सामश्रवा इति। शतपथ ब्राह्मण १४/३/१/२

[१५] धर्मं चर धर्मान्न प्रमदितव्यम्। तैत्तिरीयोपनिषद् १/११/२

[१६] छान्दोग्योपनिषद् ७/२/१ नारद सनत्कुमार कथा

[१७] शतपथ ब्राह्मण १४/१/३/२८

[१८] शतपथ ब्राह्मण १४/२/४/१०

पाठ्यक्रम- शतपथ ब्राह्मण में पाठ्यविषय की बहुलता इस बात को सिद्ध करती है कि आत्मा के विवेचन के साथ-साथ अन्य विषयों का भी चिन्तन होता था। इन विषयों के ज्ञाता को सम्भवतः मन्त्रविद् कहते थे। पाठ्यविषयों में वेद चतुष्टय, इतिहास, व्याकरण, पुराण, अंकगणित, ऋतु विज्ञान, वाद-विवाद, देवविद्या, भूत विद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्र विद्या, सर्प विद्या, नृत्य-संगीत-वाद्यविद्या, यज्ञ-याग-विद्या अनिवार्य रूप से रखी गई थी।[१९] ब्रह्मविषयक वाद-विवाद ब्रह्मोद्य कहलाते थे।[२०] अतः उसमें दक्षता प्राप्त कराने के लिये तर्कशास्त्र का अध्ययन अपेक्षित था। आचार्य शंकर वाकोवाक्य का अर्थ तर्कशास्त्र करते हैं।[२१] मद्र देश के काप्य पतञ्जल के यहाँ यज्ञशास्त्र का अध्ययन अध्यापन होता था। आरुणि उद्दालक ने वहाँ जाकर इसका अध्ययन भी किया था।[२२]

शिक्षण पद्धति- तत्कालीन समाज में शिक्षा देने की अनेक पद्धतियाँ थी। जिनमें कण्ठस्थ करने की पद्धति, प्रवचन, व्याख्यान, प्रश्नानुप्रश्न तथा प्रयोगात्मक पद्धतियाँ थीं। याज्ञवल्क्य का कथन है कि मैं व्याख्यान करूंगा।[२३] तुम मेरे व्याख्यात वाक्यों का चिन्तन करना।[२४] व्याख्यानों को रोचक बनाने के लिये दृष्टान्तों का आश्रय लिया जाता था। दैनन्दिन जीवन के प्रसङ्गों में पाये जाने वाले तत्त्वों को दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत किया जाता था। उदाहरणार्थ- आत्मा से जगत् सृष्टि बताते हुए कहा गया है कि जैसे- मकड़ी तन्तुओं से ऊपर की ओर जाती है और जैसे अग्नि से चिनगारियां निकलती हैं, उसी प्रकार आत्मा से समस्त प्राण, लोक, देवगण तथा भूतादि विविध रूप से उत्पन्न होते हैं।[२५] गार्गी से याज्ञवल्क्य ने ब्रह्मलोक के विषय में अतिप्रश्न न करने के लिये कहा। अतिप्रश्न (अधिक प्रश्न) करने से मस्तक कट जाने

---

[१९] छान्दोग्योपनिषद् ७/२/१ नारद सनत्कुमार कथा

[२०] शतपथ ब्राह्मण १४/३/१/११

[२१] वाक्योवाक्यं तर्कशास्त्रम्। छान्दोग्योपनिषद् ७/१/२ शांकर भाष्य

[२२] मद्रेष्वसाम पतंजलस्यकाप्यस्य गृहे यज्ञमधीयानाः। शतपथ ब्राह्मण १४/३/७/१

[२३] व्याख्यास्यामि ते व्याचक्षाणस्य तु मे निदिध्यासस्व। शतपथ ब्राह्मण १४/४/२/११

[२४] शतपथ ब्राह्मण १४/४/२/२

[२५] शतपथ ब्राह्मण १४/२/१/२०

की बात कही गई है।[२६] अजातशत्रु गार्ग्य का हाथ पकड़कर सोते हुए पुरुष के पास ले जाता है। उसका नाम पुकारने पर वह नहीं उठ पाया। किन्तु सुषुप्त पुरुष के हाथ को दबाकर जगाने से वह उठ खड़ा होता है । इस प्रकार अजातशत्रु के द्वारा पुरुष के अब्रह्मत्व की सिद्धि के लिये इसी विधि का आश्रय लिया गया है। प्रयोगात्मक पद्धति हेतु महाविद्यालयों तथा गुरुकुलों में प्रयोगशाला अनिवार्य रूप से होती थी।[२७]

आचार्य के रूप में पिता- पिता को आचार्य रूप में शतपथ ब्राह्मण में निर्दिष्ट किया गया हैं। श्वेतकेतु ने अपने पिता से शिक्षा ली थी किन्तु क्षत्रिय बन्धु प्रवाहण के पास जाकर भी उसने आध्यात्मिक लाभ लिया था।[२८] पिता के आचार्यत्व में ही देवों, असुरों और मानवों की शिक्षा सम्पन्न हुई थी। केवल 'द' अक्षर से ही सम्पूर्ण उपदेश का समापन हुआ था।[२९] पिता स्वयं गायत्री उपदेश द्वारा ज्ञानारम्भ करता था। यह संस्कार पहले मौखिक स्वीकृति मात्र था।[३०]

चरक- शतपथ ब्राह्मण में चरकों का उल्लेख हुआ है।[३१] चरक विचरणशील विद्यार्थी थे जो ज्ञान-पिपासा को शान्त करने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते थे। आचार्य शंकर ने चरक के दो अर्थ दिये हैं। अध्ययनार्थ विचरण करने वाले तथा यज्ञ सम्पादक अध्वर्यु।[३२] प्रस्तुत प्रसंग में चरक का अर्थ विद्यार्थी ही समीचीन प्रतीत होता है। साधारण शिष्य चरक कोटि में नहीं आते थे। विद्वान् और सुशिक्षित जनों का भ्रमणशील वर्ग ही चरक था।[३३]

---

[२६] शतपथ ब्राह्मण १४/३/६/१

[२७] शतपथ ब्राह्मण १४/२/२/१५१६

[२८] शतपथ ब्राह्मण १४/६/२/१

[२९] शतपथ ब्राह्मण १४/५/२/१

[३०] शतपथ ब्राह्मण १४/६/२/७

[३१] मद्रेषु चरकाः पर्यव्रजाम। शतपथ ब्राह्मण १४/३/३/१

[३२] चरका अध्ययनार्थं व्रतचरणाच्चरका अध्वर्यवो वा। बृहदारण्यकोपनिषद् ३/१/१ शांकर भाष्य

[३३] वैदिक इण्डेक्स, प्रथमखण्ड पृष्ठ २५८ तथा हिन्दु सभ्यता पृष्ठ १६

विनय- विनय का साम्राज्य जैसा शतपथ ब्राह्मण में दृष्टिगोचर होता है वैसा शिक्षा के इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ है। उसका कारण यह है कि यदि किसी वस्तु की प्रतिष्ठा हुई है तो विद्या की ही है। विद्या से विनय की प्रप्ति होती है- **विद्या ददाति विनयम्।**[३४] देव, मनुष्य और असुर विभिन्न स्वभाव के होते हुए भी विद्याप्राप्ति हेतु आचार्य के निकट विनम्र भाव से उपस्थित हुए थे।[३५] उनको सम्पूर्ण रूप से परिज्ञान था कि पिता प्रजापति बिना विनयशीलता के समुचित ज्ञान का वितरण नहीं करेंगे। जनक सदृश विद्वान् राजा महर्षि याज्ञवल्क्य के ज्ञान से प्रभावित होकर विदेहों के सहित समर्पित होने में कोई संकोच नहीं करते थे।[३६] शिष्यों की उच्छृंखल मनोवृत्ति कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती। ज्ञान की प्राप्ति हेतु ब्राह्मणों तक ने अपने स्वत्व की अवहेलना करते हुए क्षत्रियों के आगे अपने को समर्पित करने में कोई संकोच नहीं किया।[३७]

शुल्क- आचार्य कुलों में अध्यापनार्थ अथवा अध्ययनार्थ कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। समित्पाणि होकर जिज्ञासु आश्रमों में जाया करते थे।[३८] आचार्यों को बड़ी-बड़ी दक्षिणा दी जाती थी। इन दक्षिणाओं से यह अर्थ असंगत होगा कि शिक्षा के निमित्त इनकी अनिवार्यता थी। विद्योपार्जन के अनन्तर शिष्य उन्हें उपहार अवश्य देते थे। ऐसी मान्यता थी कि आचार्य शिष्यों को बिना उपदेश दिये उससे धन नहीं लेते थे।[३९] आचार्यजनक[४०] और जानश्रुति[४१] द्वारा प्रदान किये जाने वाले उपहारों से निःसन्देह यह प्रतीत होता है कि आचार्य कुलों को सम्पन्न बना देने का प्रयास राजाओं

---

[३४] विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्। पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥ हितोपदेश।

[३५] शतपथ ब्राह्मण १४/५/२/१

[३६] शतपथ ब्राह्मण १४/४/१/६

[३७] शतपथ ब्राह्मण १४/२/१/१०

[३८] प्रश्नोपनिषद् १/१

[३९] याज्ञवल्क्य पिता मे· मन्यत नाननुशिष्य हरेतेति। शतपथ ब्राह्मण १४/४/१/१६

[४०] शतपथ ब्राह्मण १४/४/२/१६

[४१] छान्दोग्योपनिषद् ४/२/१

द्वारा किया जाता था। इन उपहारों को शुल्क से समीकृत करना असंगत है।

शिक्षा और समाज- शतपथ ब्राह्मण में शिक्षा के प्रति समाज बड़ा जागृत दिखाई देता है। स्वाध्याय और प्रवचन समाज के प्रत्येक घटक के लिये अनुष्ठेय थे।[४२] इस प्रकार शिक्षा को जीवन का अभिन्न अंग बनाकर समाज की आस्था तथा विश्वास से जी पाना उस युग में सम्भव न था। वस्तुतः यह युग आलोचना प्रधान था। प्रत्येक वस्तु की आध्यात्मिक व्याख्या होती थी। अतः शिक्षा की अनिवार्यता होने के कारण पिता पण्डित-पुत्र और पण्डित-पुत्री की अभिलाषा करते थे।[४३] तत्कालीन समाज में शिक्षा प्राप्ति के लिये व्यग्रता आबाल वृद्ध वनिता में दिखाई देती है। नारियों का भी शिक्षा से घनिष्ठ सम्बन्ध था। गार्गी याज्ञवल्क्य को शास्त्रार्थ हेतु खुल्लमखुल्ला निमन्त्रण देती है।[४४] मैत्रेयी आत्मज्ञानप्राप्ति हेतु अपने पति याज्ञवल्क्य को प्रोत्साहित करती है और भौतिक वस्तु को लात मार देती है।[४५] इस प्रसंग से नारी शिक्षा की पराकाष्ठा का द्योतन होता है।

शिक्षा और राज्य- शिक्षा के विकास में राज्य का महत्त्वपूर्ण स्थान था। यज्ञ के अवसरों पर राजा सम्मेलन आयोजित करते रहते थे। जिनमें अनेक विद्वान् सुदूर प्रान्त से आकर भाग लिया करते थे।[४६] इन सम्मेलनों में शास्त्रार्थ होता था। यह शास्त्रार्थ ब्रह्मविषयक था। इसे ही ब्रह्मोद्य[४७] के रूप में वर्णित किया गया था।

राजाओं की परिषद् या समितियाँ[४८] स्वयं को ज्ञान चर्चा में लगाती थीं। इन राजकीय संस्थाओं में कहीं भी ज्ञान के अतिरिक्त कोई अन्य विषय विचारार्थ प्रस्तुत नहीं हुआ है। जनक के यहाँ अधिकांश आचार्य उपस्थित होते थे। काशीराज अज्ञातशत्रु को इसी बात के ऊपर ईर्ष्या होती थी। वह भी चाहता था कि मेरे राज्य में

---

[४२] तैत्तिरीयोपनिषद् १/९/१

[४३] शतपथ ब्राह्मण १४/६/४/१७१८

[४४] शतपथ ब्राह्मण १४/३/८/२

[४५] येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भगवन् वेद तदेव मे ब्रूहि इति। शतपथ ब्राह्मण १४/२/४/३

[४६] शतपथ ब्राह्मण १४/३/८/२

[४७] शतपथ ब्राह्मण १४/३/८/३१

[४८] शतपथ ब्राह्मण १४/६/२/१

बहुत से ब्राह्मण या आचार्य आवें। इस प्रकार राजाओं के द्वारा विद्वानों का बड़ा सम्मान होता था।

शिक्षा एवं ऋषि दयानन्द- महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपनी शिक्षा नीति का आधार वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषद् और मनुस्मृति को बनाया है। सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में लिखते हैं- '**अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः। मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद**'।[४९] यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य है। वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् है, जिसके माता और पिता धार्मिक और विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है, उतना किसी से नहीं। जैसा माता सन्तानों पर प्रेम, उनका हित करना चाहती है। उतना कोई अन्य कोई नहीं करता। मातृमान् का अर्थ है- **प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य सः।** धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे।[५०]

स्वामी दयानन्द ने पूर्णरूप से गुरुकुलीय शिक्षा पद्धति को स्वीकार किया है। वे सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय सम्मुलास में लिखते हैं- कन्याओं और लड़कों के विद्यालय पाँच कोश दूर रहने चाहिए। स्वामी जी ने सह शिक्षा का प्रबलता से विरोध किया है। विद्यालय जाने से पूर्व सन्तानों को माता-पिता शिक्षित करेंगे। पुनः विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में शिक्षक, आचार्य और प्राध्यापक शिक्षित करेंगे।[५१]

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायता॥[५२]

अर्थात् नदियों के संगम पर और पर्वतों की उपत्यका (तलहटी) पर विद्वान् और बुद्धिमान् जन उत्पन्न होते हैं। इस यजुर्वेद की मान्यता को स्वीकार करके

---

[४९] शतपथ ब्राह्मण १४/२/१/१

[५०] सत्यार्थ प्रकाश, द्वितीय समुल्लास, स्वामी दयानन्द सरस्वती

[५१] सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास, स्वामी दयानन्द सरस्वती

[५२] यजुर्वेद २६/१५

गुरुकुलों की स्थापना वनों, पर्वतों और नदियों के निकट होनी चाहिए। सबको शिक्षा की अनिवार्यता पर ऋषि लिखते है- सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार और यथायोग्य व्यवहार करना चाहिए, यह शिक्षा के बिना सम्भव नहीं है।[५३] वे गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित वर्णव्यवस्था को स्वीकार करते हैं। नारियों की शिक्षा के प्रबल समर्थक ऋषि दयानन्द पदे-पदे नर और नारी दोनों को समान शिक्षा देना चाहते हैं।

आचार्य दयानन्द शतपथब्राह्मण को अपनी पाठ विधि में स्थान प्रदान करते हैं। पश्चात् छः वर्षों के भीतर चारों ब्राह्मणों अर्थात् ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मणों के सहित चारों वेदों को स्वर, शब्द, अर्थ, सम्बन्ध तथा क्रिया सहित पढ़ना योग्य है।[५४] दयानन्द लिखते हैं- स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सबको तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसन दिये जाये, चाहे वह राजकुमार व राजकुमारी हो, चाहे दरिद्र की सन्तान हो, सबको तपस्वी होना चाहिए।[५५]

[५३] आर्य समाज का सप्तम नियम

[५४] सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास, स्वामी दयानन्द सरस्वती

[५५] सत्यार्थ प्रकाश, द्वितीय समुल्लास, स्वामी दयानन्द सरस्वती

शतपथ ब्राह्मण में पञ्चाग्नि-विद्या

डॉ० अनीता राजपाल[१]

शतपथ ब्राह्मण में 'सप्तधा-निरूपण' के प्रसंग में कहा गया है कि तीन लोक हैं - मनुष्यलोक, पितृलोक और देवलोक।[२] मर्त्यलोक पुत्रों के द्वारा जीतने योग्य है, अन्य कर्म से नहीं, कर्म से पितृलोक और विद्या से देवलोक। इस स्थल पर किन कर्मों से और किस मार्ग से इन लोकों को प्राप्त किया जा सकता है, यह स्पष्ट नहीं किया गया है। कहीं-कहीं देवताओं से सुपथ पर ले चलने की प्रार्थना की गयी है- '**अग्ने नय सुपथा**'।[३] याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद में मैत्रेयी याज्ञवल्क्य से पूछती है- 'यदि पृथिवी धन से पूर्ण हो जाए तो क्या मैं अमर हो जाऊँगी?' याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया- 'धन से अमरत्व प्राप्त नहीं किया जा सकता।'[४] इन प्रश्नों और जिज्ञासाओं का विस्तृत विवेचन 'बृहदारण्यक' नामक चतुर्दश काण्ड के 'श्वेतकेतु-प्रवाहण-गौतम-संवाद' में उपलब्ध होता है।

प्रवाहण जैबालि ने श्वेतकेतु से पाँच प्रश्न[५] पूछें -

१. प्रजाएँ मरने के बाद भिन्न-भिन्न गतियों को किस प्रकार प्राप्त करती हैं?

२. पुनः कैसे इस लोक में आती हैं?

३. बहुत से व्यक्ति जो इस लोक को त्याग देते हैं, पुनः इस लोक में नहीं लौटते?

---

[१] **उपाचार्या, संस्कृत विभाग, हिन्दू-महाविद्यालय, दिल्ली वि०वि०, दिल्ली**

[२] अथ त्रयो वाव लोकाः। - शतपथ ब्राह्मण, १४.४.३.२४

[३] शतपथ ब्राह्मण, ८.३.१

[४] ...सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथ। तेनामृता स्यामिति। शत० ब्रा०, १४.५.४.२

[५] शतपथ ब्राह्मण, १४.९.१.२-३

४. किस आहुति के देने पर जल पुरुष की वाणी बनकर उठते और बोलते हैं?

५. देवयान का मार्ग कौन-सा है? और पितृयान का मार्ग कौन-सा है?

जीव या प्राणी किस प्रकार जन्म लेता है? अथवा पाँचवी आहुति में जल पुरुष कैसे बन जाता है? इस प्रश्न के उत्तर में ही ऋषि प्रवाहण 'पञ्चाग्नि' का वर्णन करते हैं।

जीव शरीर छोड़ने के बाद कहाँ जाता है? कैसे वहाँ से पुनः आता है? कोई-कोई जीव क्यों नहीं लौटते? इन्हीं शेष चार प्रश्नों के उत्तर में देवयान और पितृयान का वर्णन किया गया है।[६]

पञ्चाग्नि का स्वरूप

प्रथम अग्नि- द्युलोक प्रथम अग्नि है। आदित्य उस अग्नि की समिधा, किरणें धुआँ, दिन लौ, चन्द्रमा अंगारा, नक्षत्र चिंगारियाँ हैं। इस अग्नि में देव श्रद्धा की आहुति देते हैं। इस आहुति से सोम राजा उत्पन्न होता है।

द्युलोक से सम्बन्धित वस्तुओं को ही इस अग्नि की समिधादि कहा गया है। द्युलोक आदित्य (सूर्य) से ही प्रकाशवान् है। अतः सम्यक् प्रकार से इन्धन (दीपन) करने के कारण आदित्य ही समिध् (इन्धन) है।[७] जिस प्रकार अग्नि में समिधा डालने पर धुँआ निकलता है, उसी प्रकार सूर्य से किरणें निकलती हैं अतः '**उत्थानसामान्यात्**' = निकलने की समानता के कारण किरणों को धुँआ कहा गया है। दिन में सूर्य का प्रकाश रहता है। अतः दिन को लौ कहा गया है। लौकिक अंगारे ज्वाला के शान्त होने पर ही प्रकट हुआ करते हैं। उसी प्रकार दिन के शान्त होने पर चन्द्र अभिव्यक्त होता है। इधर-उधर छिटके रहने के कारण तथा अल्प प्रकाश की समानता के कारण नक्षत्रों को चिंगारियाँ कहा गया है।[८]

द्वितीय अग्नि- '**पर्जन्यो वा अग्निः**'– पर्जन्य द्वितीय अग्नि है। संवत्सर समिधा, बादल धुँआ, बिजली लौ, अशनि (चमक) अंगारा और गरज चिंगारियाँ हैं। इस अग्नि में देव सोम की आहुति देते हैं। इस आहुति से वृष्टि उत्पन्न होती है।

---

[६] शतपथ ब्राह्मण, १४.९.१.१२-१७

[७] छान्दोग्योपनिषद्, शांकरभाष्य ५.४.१

[८] शतपथ ब्राह्मण, सायण भाष्य, १४.९.१.१२

तृतीय अग्नि- '**अयं लोकः**' यह लोक तृतीय अग्नि है। पृथिवी समिधा, वायु धुँआ, रात्रि लौ, दिशाएँ अंगारा, उपदिशाएँ चिंगारियाँ हैं। इस अग्नि में देवगण वृष्टि की आहुति देते हैं, जिससे अन्न उत्पन्न होता है।

चतुर्थ अग्नि- '**पुरुषः चतुर्थोऽग्निः**' पुरुष चतुर्थ अग्नि है। मुख समिधा, प्राण धुँआ, वाक् लौ, आँख अंगारा, कान चिंगारियाँ हैं। इस अग्नि में देवगण अन्न की आहुति देते हैं, जिससे वीर्य उत्पन्न होता है।

पञ्चम अग्नि- '**योषा वा अग्निः**' स्त्री पञ्चम अग्नि है। उपस्थ-इन्द्रिय समिधा, (इन्द्रिय) के लोम धुँआ, योनि लौ, सहवास अंगारा और आनन्द चिंनगारियाँ हैं। इस अग्नि में देवगण वीर्य की आहुति देते हैं, इस आहुति से पुरुष उत्पन्न होता है।

इस प्रकार प्रथम आहुति श्रद्धा से उत्पन्न 'सोम' द्वितीय आहुति का होम्य है, द्वितीय आहुति से उत्पन्न 'वृष्टि' तृतीय आहुति का होम्य, तृतीय आहुति से उत्पन्न 'अन्न' चतुर्थ का, चतुर्थ से उत्पन्न 'रेत' पञ्चम का होम्य है। रेत से ही पुरुष उत्पन्न होता है।

शंका- सोम, वृष्टि, अन्न और रेत ये चार आहुतियाँ जल रूप हैं। आस्तिक-भाव से युक्त बुद्धि का नाम श्रद्धा है। ऐसी श्रद्धा का द्रवरूप (जल) होना संभव नहीं है। अतः जब प्रथम अग्नि में जल का श्रवण नहीं है तब पाँचवी आहुति में जल पुरुषाकार होता है? ऐसा निर्धारण किस प्रकार संभव है?[९]

समाधान- इस शंका के समाधान में वेदान्त दर्शन में कहा गया है कि प्रथम आहुति में 'श्रद्धा' शब्द से जल अभिप्रेत है। श्रद्धा के कार्य सोम, वृष्टि आदि उत्तरोत्तर स्थूल होते हुए जलभूयस्त्व देखने में आते है। कारण के अनुरूप ही कार्य होता है। यहीं श्रद्धा के जल होने में युक्ति है। '**श्रद्धा वा आपः**' ऐसा वैदिक प्रयोग भी देखने में आता है।[१०] इसलिए द्रवीभूत पदार्थ का परिणाम होने से श्रद्धा जल है।

शंका- श्रद्धा आदि क्रम से जल के पुरुषाकार अर्थात् जीव के सूक्ष्म देह की गति का निर्देश है, वहाँ जीवात्मा का उल्लेख नहीं है, तब यह कैसे निश्चय होगा कि सूक्ष्मदेह से परिवेष्टित जीवात्मा ही गति करता है?[११]

---

[९] प्रथमेऽश्रवणादिति चेन्न ता एव ह्युपपत्तेः। - ब्रह्मसूत्र, ३.१.५

[१०] श्रद्धाकार्यं च सोमवृष्ट्यादि स्थूलीभवदब्बहुलं लक्ष्यते। - ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, ३.१.५

[११] ब्रह्मसूत्र, ३.१.६

समाधान- शतपथ ब्राह्मण के इसी प्रकरण में यज्ञ, दान और तप तथा छान्दोग्योपनिषद्[१२] में कहा गया है कि जो इष्ट (यज्ञ, यागादि), पूर्त्त (कूप, तड़ाग, विद्यालयादि) तथा दत्त (विभिन्न प्रकार के दान) आदि कर्म करते हैं, वे पितृयान-मार्ग से गति करते हुए चन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं। इनके विषय में कहा गया है- '**एष सोमो राजा**'।[१३] इस प्रकार इष्टादि कर्म करने वाले जीवात्माओं का जो सोम राजा बनना कहा गया है, वही द्युलोक में श्रद्धा आहुति का फल बतलाया गया है।[१४]

जीवों के साथ आहुतिमय गमन में दूसरी श्रुति भी है- अग्निहोत्र प्रकरण में राजा जनक ने याज्ञवल्क्य से छः प्रश्न किये हैं- इन प्रातः और सायं की आहुतियों में उत्क्रान्ति, गति, प्रतिष्ठा, तृप्ति, पुनरावृत्ति और उत्पन्न होने वाला लोक क्या तुम जानते है? इन प्रश्नों का उत्तर भी राजा ने दिया- वे ये हुत आहुतियाँ उत्क्रमण करती हैं, वे अन्तरिक्ष द्वारा द्युलोक में जाती हैं, द्युलोक में प्रतिष्ठा करती हैं, द्युलोक को तृप्त करती हैं, वहाँ से वे पुनः लौटती हैं, इसके पश्चात् पृथिवी में, पुनः पुरुष में, उससे स्त्री में आहुत हुई पुरुषरूप से उत्थान करती हैं।[१५] अतः यह स्पष्ट होता है कि आहुतिमय जल से परिवेष्टित जीवात्मा ही कर्मफल का भोग करने के लिए गमन करता है।

इस प्रकार द्युलोक, पर्जन्य, मर्त्यलोक, पुरुष और स्त्री ये पाँच अग्नियाँ हैं। इनसे ही क्रमशः सोम, वृष्टि, अन्न और रेत ही स्थूलता के तारतम्य के क्रम को प्राप्त करता हुआ पुरुष उत्पन्न होता है।

यह जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् किन-किन मार्गों से किस प्रकार गति करता है? जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार निम्न तीन प्रकार के मार्गों से गमन करता है-

१. देवयान- जो (वानप्रस्थी और परिव्राजक) वन में निवास करते हुए श्रद्धा और तप से 'सत्य' ब्रह्म की उपासना करते हैं, वे सूर्य के उत्तरायण मार्ग से जाते हुए

---

[१२] अथ ये यज्ञेन दानेन तपसा लोकं जयन्ति। - शतपथ ब्राह्मण, १४.९.१.१९, छान्दोग्योपनिषद्, ५.१०.३

[१३] बृहदारण्यकोपनिषद्, ६.२.९

[१४] ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, ३.१.६

[१५] शतपथ ब्राह्मण, ११.६.२.४-८

ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं। वहाँ से उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती। ये ही देवयान का मार्ग हैं।[१६]

२. पितृयान- यज्ञ, दान और तप अथवा 'इष्टापूर्त्त और दत्त'[१७] इन तीन कर्मों को करता हुआ जीव मृत्यूपरान्त दक्षिणमार्ग से गमन करता हुआ पितृलोक को प्राप्त करता है। महर्षि अंगिरा के अनुसार भवसागर से पार करने के लिए ये यज्ञरूपी 'प्लव' (छोटी नौकायें) अदृढ़, अस्थिर और विनाशशील हैं।[१८] अतः ये श्रेष्ठ कर्म नहीं हैं।[१९]

कर्मफल के क्षीण हो जाने पर इनका आत्मा सूक्ष्म देह के साथ निम्न प्रकार से नीचे आता है- आत्मा आकाश को प्राप्त करता है, आकाश से वायु को, वायु से वृष्टि को, वृष्टि से पृथिवी को, पृथिवी को प्राप्त करके वह अन्न हो जाता है, पुनः वह बार-बार चक्कर लगाता है। मनुष्य अन्न खाता है और जो वीर्य का सिञ्चन करता है। उससे दुबारा गर्भ बनता है। इस प्रकार वे पुनः-पुनः संसार में चक्कर लगाते हैं।[२०]

शंका- इष्ट कर्म करने वालों को 'देवों का अन्न' अर्थात् 'देवों का भक्ष्य' बतलाया गया है, तब उन्हें वहाँ कर्मफलभोग कैसे प्राप्त होता है?

समाधान- यहाँ मोदकादि के समान चर्वण-चबाना अथवा निगलना अभिप्रेत नहीं है, क्योंकि देवगण न खाते हैं, न पीते हैं। इष्टादि कर्मकारी आत्मज्ञानी नहीं हैं। जबकि पञ्चाग्नि-विद्या को गौण रूप से आत्मविद्या भी कहते हैं। अतः पञ्चाग्नि-विद्या (आत्मविद्या) से रहित होने के कारण इष्टकारी देवों के अन्न हैं, ऐसा पञ्चाग्नि विद्या की प्रशंसा के लिए गुणवाद से कहा है।[२१]

३. जायस्व-म्रियस्व यान- तीसरी गति जीव की '**जायस्व-म्रियस्व**' की है। यदि अच्छे कर्म हुए तो मनुष्य योनि में, अन्यथा कुत्ता, शूकर आदि पशु या पक्षी या

---

[१६] शतपथ ब्राह्मण, १४.९.१.१८

[१७] शतपथ ब्राह्मण, १४.९.१.१९, छान्दोग्योपनिषद्, ५.१०.३

[१८] मुण्डकोपनिषद्, १.२.७

[१९] वही, १.२.८

[२०] शतपथ ब्राह्मण] १४-९-१-१९

[२१] पंचाग्निविद्यामिहात्मविद्येत्युपचरन्ति प्रकरणात्। - ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य, ३-१-७

स्थावर योनियों को प्राप्त होते हैं।[२२] कठोपनिषद् में भी एक तीसरे मार्ग का उल्लेख मिलता है, जो दुःखमय एवं अन्धकार से आवृत्त है।[२३]

शंका- जिन्होंने इष्टादि अच्छे कर्म नहीं किये हैं, वे किस लोक को प्राप्त करते हैं?

समाधान- इष्टादि कर्म न करने वाले मृत्यु के अनन्तर चन्द्रलोक न जाकर पापफलों को भोगने के लिए विभिन्न योनियों में नियन्ता (यम) की व्यवस्था के अनुसार चले जाते हैं। कर्मफल के समाप्त होने पर अन्य अवशिष्ट (संचित) कर्मानुसार वे पुनः चन्द्रलोक मार्ग द्वारा इस लोक में साधारण मानव योनि में जन्म लेते हैं।[२४] कठोपनिषद् में भी कहा गया है कि ऐसे व्यक्ति बार-बार यम के वश में आते हैं।[२५] परमात्मा यम रूप में जीवात्माओं के पापपुण्य फलों का नियन्ता है।[२६]

इस प्रकार जीव की उत्पत्ति, देवयान और पितृयान के द्वारा जीव का विभिन्न लोकों में जाना और पुनः मर्त्यलोक में आना तथा जीव की मुक्ति का वर्णन करने से पञ्चाग्नि-विद्या आत्म-विद्या है। आत्मस्वरूपस्थ होने के लिए अच्छे कर्मों को करना आवश्यक है।

---

[२२] यः एतौ पन्थानो न विदुस्ते कीटाः पतंगाः यदिदं दन्दशूकरम्। - शतपथ ब्राह्मण,१४.९.१.१९, छान्दोग्योपनिषद्, ५.१०.३

[२३] अनन्दा नाम ते लोकाः। - कठोपनिषद्, १.३

[२४] ब्रह्मसूत्र तथा शांकरभाष्य, ३.१.१२-१३

[२५] कठोपनिषद्, २.६

[२६] वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा सपर्यत। - अथर्ववेद, १८.३.१३

शतपथ ब्राह्मण में छन्द तथा छन्द का व्यावहारिक पक्ष

डॉ० नन्दिनी रघुवंशी[१]

छन्दोभूतमिदं सर्वं वाङ्मयं स्याद् विजानतः।
नाच्छन्दसि न चापृष्ठे शब्दश्चरति कश्चन॥[२]

विद्वान् पुरुषों के लिए समस्तवाङ्मय छन्दोरूप है। छन्द के बिना एक भी शब्द प्रवर्त्तित नहीं होता। कात्यायन मुनि के ये शब्द छन्द की व्यापकता को द्योतित करते हैं। **'छन्दोहीनो न शब्दोऽस्ति न छन्दः शब्दवर्जितम्'** नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि की यह उक्ति भी प्रकृत-विषय को स्पष्ट करती है। वस्तुतः यह छन्द का वैशिष्ट्य ही है कि छन्द प्राणरूप कहा जाता है। हमारे जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप में छन्द दृग्गोचर होता है। यह समस्त प्रकृति भी छन्दोमयी ही है। आप्रातः रात्रिपर्यन्त सभी प्राकृतिक क्रियाएँ छन्दोमयी हैं। प्रकृति के विविध तत्त्व जैसे नदियाँ, पर्वत, समुद्र, पवन, नाना पशु-पक्षिगण ये सभी अपनी नियतकार्यशैली से प्रकृति के **'छन्दस्त्व'** को ही तो प्रकट करते हैं। छन्दोमय हो जाना ही इस जीवन का आह्लाद है **सर्वतः छन्द का आवरण ओढ़ लेना ही आनन्द है। आवारक के रूप में छन्द विस्मय से विचेतन करके मोहरूपी निद्रा** को प्राप्त कराता है पुनः प्राणरूप में हममें प्रतिष्ठित होकर सभी कार्य आह्लाद से कराता है।

वैसे तो छन्द की स्थिति शाश्वतिक है पुनः भी शास्त्ररूप में छन्द एक वेदाङ्ग

---

[१] **सहायकाचार्या, संस्कृत विभाग, कला संकाय, डी०ई०आई० (डीम्ड विश्वविद्यालय) दयालबाग, आगरा-२८२००५**

[२] कात्यायनकृत ऋग्यजुष् परिशिष्टम् पृष्ठ सं० ९२

है। वेदशरीर में छन्द की स्थिति पादरूप में अवस्थित है। छन्दोरूप वेद तथा वैदिक वाङ्मय के अध्ययन के लिए छन्द परिज्ञान आवश्यक है कहा भी गया है-

आर्षछन्दश्च दैवत्यं विनियोगस्तथैव च।

वेदितव्यं प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विशेषतः॥ [३]

'चदि आह्लादने दीप्तौ च' इस भ्वादि धातु से **'चन्देरादेश्छः' सूत्र** से असुन् प्रत्यय तथा आदि चकार को छकारादेश करके छन्द शब्द सिद्ध हुआ है। धात्वर्थ के निर्देशानुसार इसका अर्थ आनन्ददायक, सत्यप्रदीपक, आह्लादकारी सिद्ध होता है। निरुक्त में छन्द का निरूपण **'छन्द इति स्रोतनाम', 'प्रज्ञापकैर्गायत्यादिभिः'** इस प्रकार किया गया है। वैदिक वाङ्मय में छन्द शब्द के नाना अर्थ हैं। यथा-**'श्रिये छन्दो न स्मयते विभाति'**[४],**'अग्निर्वै प्रिया तनू छन्दांसि'**[५], **'छन्दांसि वै व्रजा गोस्थानम्**[६]**'** इत्यादि।

शतपथ ब्राह्मण में छन्द शब्द विभिन्न प्रतीकात्मक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। लगभग ३० से अधिक उपमानों के लिए छन्द शब्द प्रयुक्त हुआ है यथा-

देविका के रूप में छन्द - **'छन्दांसि देविकाः'**[७], **'छन्दांसि वै देवाः प्रातर्यावाणः'**[८] नित्यनियम अनुशासन में रहकर जिन दिव्यशक्तिसम्पन्न देवी-देवताओं का जीवन कठोर पुरुषार्थ में व्यतीत होता है वे **'प्रातर्यावाणः'** ब्राह्ममुहूर्त्त में कार्यार्थ गमन करने वाले देव प्रत्यक्ष छन्दःस्वरूप हैं। इनका अनुशासित जीवन छन्दोबद्धता का प्रतीक है और यही इसकी व्यवहारिकता है।

पशु के रूप में छन्द - पशवश्छन्दांसि[९] जिस प्रकार वाहन से युक्त होकर पशु

---

[३] छन्दःशास्त्रम्

[४] ऋग्वेद ६/९२/१

[५] तैत्तिरीय सं० १/२/५

[६] तैत्तिरीय ब्राह्मण २/३

[७] शतपथ ब्राह्मण ९/४/१/३९

[८] शतपथ ब्राह्मण ३/९/३/८

[९] शतपथ ब्राह्मण ७/५/२/४२

मनुष्य को गन्तव्य तक ले जाते हैं वैसे ही मन्त्रों में संयुक्त छन्द हव्य सामग्री को देवों तक ले जाता है। सामान्यतः यज्ञ में पशु और छन्द दोनों का ही प्रत्यक्ष योगदान है। पशु हवनीय पुरोडाश आदि का वहन करता है तथा छन्द मन्त्रों का।

मधुर वाणी के रूप में छन्द - 'वाग्वै छन्दांसि', 'रसो वै छन्दांसि'[१०] छन्दोयुक्त काव्य में सरसता की वृद्धि हो जाती है। जिससे वह सहृदयों के लिए सुग्राह्य होकर साधारणीकरण की उसी अवस्था में पहुँच जाता है जिस साधारणीकरण का सर्वप्रथम वर्णन आचार्य भट्टनायक ने रससूत्रनिस्पत्ति के '**भुक्तिवाद**' में किया गया था।

मनोहारिणी वाणी ही इस लोक में मृदुवाक्यरूपी अनायस् तीक्ष्णशस्त्र है। वस्तुतः आकर्षण और वशीकरण का साधन एकमात्र रसमयी वाग्देवता ही है। इसीलिए शतपथ ब्राह्मण में वाणी को छन्दों का प्रतीक माना है।

ऋतुओं के रूप में छन्द -शतपथ ब्राह्मण में ऋतुओं के प्रतीक के रूप में छन्दों का वर्णन किया गया है। गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती, उष्णिक् छन्दों का क्रमशः वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, संवत्सर तथा शिशिर के रूप में वर्णन हुआ है। '**गायत्री वासन्ती गायत्री गायत्रम्**'[११] गायत्री छन्द वसन्त ऋतु है अर्थात् वसन्त के समान आह्लादक है। '**त्रिष्टुप् ग्रैष्मीः**'[१२] त्रिष्टुप् छन्द ग्रीष्म ऋतु के समान प्रचण्ड और तेजयुक्त है वैसे भी ऋग्वेद के अधिकांश मन्त्र त्रिष्टुप् से ही आवृत्त है जो इसकी तेजोमयता को दर्शाता है। '**जगती वर्षा**'[१३], '**शरदृतोरनुष्टुभं छन्दः**'[१४], '**हेमन्ताद् पंक्ति छन्दः**'[१५] इत्यादि अंशों से स्पष्ट है कि शतपथ में ऋतुओं के प्रतीक के रूप में छन्द वर्णित है।

---

[१०] शतपथ ब्राह्मण ७/३/१/३७

[११] शतपथ ब्राह्मण ८/१/१/५

[१२] शतपथ ब्राह्मण ८/१/१/८

[१३] शतपथ ब्राह्मण ८/१/२/२

[१४] शतपथ ब्राह्मण ८/१/२/५

[१५] शतपथ ब्राह्मण ८/१/२/९

दिशाओं के रूप में छन्द -'छन्दांसि वै दिशः'[१६] समस्त संसार में व्याप्त दिशाओं के प्रतीक छन्द हैं। जैसे दिशाएँ सभी ओर से संसार को आवृत करती हैं उसी प्रकार छन्द भी समस्त वाङ्मय रूपी संसार को आवृत करते हैं। प्राची-दक्षिणा-प्रतीची-उदीची ऊर्ध्वा आदि दिशाओं को क्रमशः गायत्री-त्रिष्टुप्-जगती-अनुष्टुप्-पंक्ति आदि छन्द अभिहित किया हैं। जिनके प्रमाण निम्न हैं- गायत्री **वै प्राची दिक्**[१७], **त्रिष्टुप् दक्षिणा**[१८], **जगती प्रतीची**[१९], **अनुष्टुबुदीची**[२०], **पंक्तिरूर्ध्वा**[२१]।

देवताओं के शरीरावयव के प्रतीक के रूप में - 'छन्दो देवतानां शरीरावयवप्रतीकानि'[२२] शतपथ ब्राह्मण में देवताओं के शरीरावयव के प्रतीक के रूप में भी छन्दों को वर्णन हुआ है। जो कि क्रमशः इस प्रकार हैं-

गायत्री - अग्नि देवता का शिर
उष्णिक् - सविता देवता की ग्रीवा
बृहती - बृहस्पति देव का मुख
त्रिष्टुप् - इन्द्र देवता का मध्य भाग
जगती - आदित्य देवता का श्रोणी
अनुष्टुप् - विश्वे देवता का उरु भाग
पंक्ति - मरुद्

शारीरिक अंगों के प्रतीक के रूप में - शतपथ ब्राह्मण के अनुसार शरीर के सात अंग स्वमहिमा से सप्तछन्दों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन्हीं को सप्तधाम कहा गया है- '**छन्दांसि वा अस्य सप्तधाम प्रियाणि**'[२३]।

---

[१६] शतपथ ब्राह्मण ८/३/१/१२
[१७] शतपथ ब्राह्मण ८/३/१/१२
[१८] शतपथ ब्राह्मण ८/३/१/१२
[१९] शतपथ ब्राह्मण ८/३/१/१२
[२०] शतपथ ब्राह्मण ८/३/१/१२
[२१] शतपथ ब्राह्मण ८/३/१/१२
[२२] शतपथ ब्राह्मण १०/३/२/१
[२३] शतपथ ब्राह्मण ९/२/३/४४

गायत्री - प्राण

उष्णिक् - चक्षु

अनुष्टुप् - वाक्

बृहती - मन

पंक्ति - श्रोत्र

त्रिष्टुप् - प्रजनन प्राण

जगती - अर्वाङ् प्राण

इनके अतिरिक्त अन्य भी प्रतीकों के लिए छन्द शब्द शतपथ ब्राह्मण में प्रयुक्त हुआ है जिनका संकेतमात्र अधोलिखित है-

छन्दांसि वै देवा वयोनाधा। छन्दोभिर्हीदं सर्वं वयुनं नद्धम् (८/२/२/८)

छन्दांसि वै समिद्धानि देवेभ्यो यज्ञं वहन्ति (१/३/४/६)

छन्दोभिर्हि स्वर्गलोकं गच्छन्ति (६/५/४/७)

छन्दांसि वै लोमानि (६/४/१/६)

सप्त छन्दांसि। सप्त ग्राम्याः पशवः। सप्तारण्याः तानेवैतदुभयान् प्रजापतिः (३/८/४/१६)

हिरण्यममृतं छन्दांसि (६/३/१/४२)

गायत्री वै प्राणः (१/३/५/१५)

अन्तरिक्षं वै त्रिष्टुप् (१/८/२/१२)

दशाक्षरा वै विराट् (२/५/१/२०)

अनुष्टुबैकत्रिंशदक्षरा । आत्मैकत्रिंशः (३/१/४/२३)

एकादशाक्षरा वै त्रिष्टुप्। वीर्यं त्रिष्टुप् (५/३/२/१२)

अष्टौ अग्निरूपाणि। अष्टाक्षरा वै गायत्री (६/४/१/७)

आत्मा वै त्रिष्टुप् (६/४/२/६)

बृहती हि संवत्सरः। षट्त्रिंशदक्षरा बृहती (६/४/३/१०)

शरद्दतु सोमात्। वाचो हेमन्तर्तुम् (८/१/२/८)

मयन्दं छन्दः (८/२/३/११)

परमेष्ठि छन्दः (८/२/३/१३)

त्रैष्टुभो वज्रः (८/५/१/११)

त्रिपदा गायत्री। चतुष्पदा त्रिष्टुप् (९/३/१/१७)

एकादशाक्षरा त्रिष्टुप्। वज्रास्त्रिष्टुप्। वीर्यं त्रिष्टुप् (१०/२/३/२)

प्राणो गायत्री, चक्षुरुष्णिग् वागनुष्टुभ् मनो बृहती श्रोत्र पंक्तिः।

य एवायं प्रजनन प्राणः एव त्रिष्टुप्। अथ योऽयमर्वाङ्प्राणः एष जगती। तानि वा एतानि सप्त छन्दांसि (१०/३/१/१)

त्रिपदा वै गायत्री। त्रय इमे लोकाः। चतुष्पदा वै त्रिष्टुप्। चतुश्पादाः पशवः (११/२/३/१)

त्रीणि छन्दांसि त्रयो लोकाः (१२/२/२/२१)

इन्द्रियं त्रिष्टुप्। पशवो जगती (१३/२/६/५)

परमं वा एतच्छन्दो यदनुष्टुप् (१३/३/३/१)

अष्टाक्षरा गायत्री। ब्रह्म गायत्री (१३/६/२/७)

गायत्री त्रिष्टुप् जगती छन्दसां सवनत्रयरूपाणि अर्थात् गायत्री प्रातः सवनम्। त्रिष्टुप् माध्यन्दिनसवनम्। जगती तृतीयसवनम्। तेनापशीर्ष्णो यज्ञेन देवा अर्चन्तः श्राम्यन्तश्चेरुः। (१४/१/१/१७)

इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण के चतुर्दशकाण्डों में देविका, दिशा, देव, सोम, वाक्, पशु, अमृत, प्राण, अन्तरिक्ष, अग्नि, क्षत्र, आत्मा, संवत्सर, ग्रीष्मर्तुचर्या, परमेष्ठी, वज्र, सप्तप्राण, देवशरीर, त्रिलोक सवनत्रय आदि विविध अर्थों में छन्द शब्द का प्रतीकात्मक प्रयोग मिलता है। जिससे छन्दों की व्यापकता का परिचय मिलता है।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार छन्द का व्यावहारिक पक्ष -

विविध उपमानों के रूप में प्रयुक्त हुआ छन्द शब्द शास्त्रीय दृष्टिकोण की व्यापकता को दर्शाता है। अन्यत्र विवेचित यह छन्द केवल लौकिक, वैदिक तथा मात्रिक और वार्णिक भेद को ही दर्शाता है, किन्तु शतपथ ब्राह्मण में विवेचित यह छन्द शब्द शास्त्रीय दृष्टिकोण के साथ-साथ मनुष्य जीवन के व्यवहारिक दृष्टिकोण को भी प्रस्तुत करता है। जैसे- '**छन्दांसि वै देवाः प्रातर्यावाणः**' कि देव नित्य अनुशासन और परिश्रम से मुक्त होकर दिव्यशक्ति सम्पन्न बनते हैं। उसी प्रकार हमें

भी गतिशील रहते हुए अनुशासन और परिश्रम से युक्त होकर जीवन को दिव्यशक्ति सम्पन्न और दिव्य गुणों से युक्त बनाना चाहिए। देव शक्ति सम्पन्न छन्दों की मानव जीवन में यही व्यवहारिकता है। **पशवच्छन्दांसि**- जैसे पशु वाहन से युक्त होकर देवों तक हव्य सामग्री को प्राप्त कराते हैं, उसी प्रकार छन्द भी मन्त्रों के माध्यम से हम तक श्रेष्ठ विचारों की प्राप्ति कराते हैं। '**वाग्वै छन्दांसि, रसो वै छन्दांसि**'- मधुर वाणी के रूप में छन्द जीवन में माधुर्य और आनन्द रस उत्पन्न करते हैं। ऋतुओं के रूप में छन्द जीवन की व्यापकता का प्रदर्शन करते हैं। जैसे वसन्त ऋतु सर्वसुखप्रद और सर्वमनोहारिणी है, उसी तरह वासन्ती रूप गायत्री छन्द भी सभी छन्दों में मनोहर है और जीवन में आह्लाद उत्पन्न करने वाली है। ग्रैष्म रूप त्रिष्टुप् छन्द जीवन में प्रचण्ड तेज को धारण कराता है। वर्षा ऋतु जिस प्रकार अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न कर सम्पूर्ण कामनाओं की पूर्ति कराता है, उसी प्रकार वर्षा रूप जगती छन्द हमारे जीवन को क्रियाशील बना कर सभी कामनाओं की पूर्ति कराता है। शरद्कालीन प्रकृति जैसे सर्वजन में पावनत्व और निर्मलत्व का भाव पैदा करती है, उसी प्रकार शारदीय अनुष्टुप् छन्द हमारे जीवन में पवित्रता और आह्लाद उत्पन्न करता है। जिस प्रकार हेमन्त में हमें सर्वविध आरोग्य और सर्वविध पुष्टि की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार हेमन्त रूप बृहती छन्द सर्वविध वृद्धि, आरोग्य और पुष्टि प्रदान कराता है। तथा च शिशिर में जिस प्रकार प्रकृति से निस्सारता समाप्त हो जाती है, उसी प्रकार शिशिर रूपी उष्णिक् छन्द हमारे जीवन से निस्सार तत्त्वों को पृथक् कर सारवान् बनाती है। '**छन्दांसि वै दिशः**' जैसे दिशायें समस्त संसार को आवृत्त कर रही हैं, उसी प्रकार दिशा रूपी छन्द भी हमारे जीवन को सभी श्रेष्ठ विचारों तथा श्रेष्ठ कर्मों से आवृत्त करे।

इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण में विवेचित छन्द शब्द जहाँ शास्त्रीय मर्यादा को प्रख्यापित करता है, वहीं लौकिक जीवन की व्यावहारिकता तथा उसकी स्वीकार्यता को भी प्रख्यापित करता है।

शतपथब्राह्मण एवं श्रौतसूत्रों में राजसूय यज्ञ

डॉ० सुशील कुमारी[१]

शतपथ ब्राह्मण ब्राह्मणग्रन्थों में मूर्धन्य है। विषय-विवेचन की दृष्टि से और स्थूलता की दृष्टि से इसे प्रथम स्थान प्राप्त है। यागानुष्ठान के विस्तृत विवेचन के कारण इसको सबसे अधिक ख्याति प्राप्त हुई है। शतपथ ब्राह्मण के विषय में पं० भगवद्दत्त का कथन सत्य है कि- 'जो अध्येता शतपथ पढ़ लेता है, वह याज्ञिक क्रिया का सर्वश्रेष्ठ पण्डित कहा जाता है। शतपथ में वेदार्थ की कुंजी है। प्राचीन ऐतिह्य का यह प्रामाणिक एवं अपूर्व ग्रन्थ है।[२] माध्यन्दिन (शुक्ल यजुर्वेदीय) शतपथ ब्राह्मण में १४ काण्ड, १०० अध्याय, ४३८ ब्राह्मण, ७६२४ कण्डिकाएँ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ १४ भागों में विभक्त है, इन्हें काण्ड कहते हैं। काण्डों के उपविभाग अध्याय है और अध्यायों के उपविभाग ब्राह्मण है इन ब्राह्मणों के भी उपविभाग हैं, इन्हें कण्डिका कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण के पंचम काण्ड में राजसूय यज्ञ का वर्णन किया गया है। श्रौतसूत्र सामान्यतया ब्राह्मणग्रन्थों में निर्धारित क्रम का अनुसरण करते हैं, परन्तु कभी-कभी वे संहिता के क्रम का भी अवलंबन करते हैं। इनमें कर्मकाण्ड के विकास का इतिहास प्राप्य है।

राजसूय यज्ञ पूर्णतया सोमयज्ञ न होकर एक ऐसा महायज्ञ अथवा छोटे-छोटे यज्ञों का महासंघ है, जिसमें बहु-विध पृथक्-पृथक् इष्टियाँ सुदीर्घकाल-पर्यन्त सम्पादित होती रहती हैं। रामायण, महाभारत आदि के साथ-साथ वेदाङ्ग वाङ्मय से इस यज्ञ की अति प्राचीन व्यापक परम्परा के सङ्केत प्राप्त होते हैं। सूर्यवंशीय तथा

---

[१] **सहायकाचार्या, संस्कृत विभाग, मैत्रेयी महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय), चाणक्यपुरी, दिल्ली-११००२१**

[२] विप्रियार्थं सशिष्यस्य मातुलस्य महात्मनः। (महाभारत, शान्तिपर्व, ३१८.१७)

सोमवंशीय राजाओं द्वारा इसके अनुष्ठान की परम्परा में इतिहास साक्षी है। महाभारत में युधिष्ठिर द्वारा इसके सम्पादन के पुष्ट प्रमाण प्राप्त होते हैं।[३] शांखायन श्रौतसूत्र के अनुसार इसको सर्वप्रथम राजा हरिश्चंद्र ने वरुण से प्राप्त किया था। हरिश्चन्द्रकृत राजसूय यज्ञ में विश्वामित्र, आङ्गिरस तथा जमदग्नि ने क्रमशः होता, उद्गाता तथा अध्वर्यु-संज्ञक ऋत्विजों का दायित्व निर्वाह किया था- **तस्मै हरिश्चन्द्राय वरुणो एतं राजसूयाख्यं यज्ञक्रतुं प्रोक्तवान् तस्य क्रतोर्विश्वामित्रो होता बभूव, अथास्य आङ्गिरस उद्गातासीत्। जमदग्निनामर्षिः सोऽध्वर्युरासीत्।**[४]

राजसूय-शब्द का निर्वचन- राज तथा सूय के शाब्दिक योग से निष्पन्न राजसूय शब्द के दो निर्वचन किये जा सकते हैं। एक सोम को दृष्टि में रखकर तथा एक राजा को। सोम को दृष्टि में रखकर इसका निर्वचन होगा- **राजा सोमः सूयते अभिषूयते यागार्थमत्रेति राजसूयः।**[५]परन्तु यह निर्वचन अतिव्याप्ति दोष से युक्त होने के कारण सर्वथा निर्दुष्ट नहीं माना जा सकता क्योंकि यागार्थ सोम तो प्रत्येक सोमयाग में अभिषव को प्राप्त करता है। द्वितीय निर्वचन में सूय पद अभिषेक का द्योतक प्रतीत होता है। सायण के अनुसार इसमें यजमान 'राजा' का अभिषेक होता है इसलिए इसका यह नामकरण सर्वथा उपयुक्त है- **सूयतेऽभिषिच्यते यजमानोऽस्मिन् महाक्रतौ सोऽयमभिषेकयुक्तो महाक्रतुः राजसूयः।**[६]

शबर स्वामी ने दोनों ही निर्वचनों की ओर सङ्केत किया है- **राजा यत्र सूयते तस्माद् राजसूयः। राज्ञो वा यज्ञो राजसूयः।**[७]

फल-प्रयोजन तथा अधिकारी- राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान स्वर्ग एवं स्वराज्य की कामना से राजा ही कर सकता है। **शतपथब्राह्मण** के अनुसार राजसूय करने से व्यक्ति राजा होता है।[८] शांखायन श्रौतसूत्र के अनुसार जो यजमान राजसूय यज्ञ

---

[३] यज्ञतत्त्वप्रकाश, पृ. १०८-११९

[४] शांखायनश्रौतसूत्र, १५.२०.२१ भाष्य

[५] यज्ञतत्त्वप्रकाश, पृ. १०८

[६] ताण्ड्यब्राह्मण, १८.८.१ (सायणभाष्य)

[७] जैमिनिसूत्र, ४.४.१ (शाबरभाष्य)

[८] शतपथब्राह्मण, ९.३.४.८

करता है वह समस्त राज्यों में श्रेष्ठता प्राप्त करके अपने राज्य पर आधिपत्य का भागीदार होता है- **यद् यजमानो यद्राजसूयेन यजते सर्वेषां राज्यानां श्रेष्ठ्यं स्वराज्यमाधपत्यं पर्येति।**[९]

लाट्यायन, सत्याषाढ तथा कात्यायन आदि ने भी राजा अथवा स्वर्गकामी राजा द्वारा राजसूय के अनुष्ठान का निर्देश किया है।[१०] आश्वलायन श्रौतसूत्र के अनुसार वाजपेय यज्ञ का सम्पादन करने के बाद ही राजा को राजसूय यज्ञ करना चाहिए।[११] शतपथब्राह्मण के अनुसार राजसूय करने से व्यक्ति राजा होता है जबकि वाजपेय करने से सम्राट।[१२] राजा बनने के पश्चात् सम्राट् की स्थिति होती है। इस दृष्टि से तो वाजपेय के पश्चात् राजसूय का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता है। इसीलिए कात्यायन ने तो राजसूय यज्ञ का अधिकारी उस व्यक्ति को बताया है जिसने वाजपेय यज्ञ न किया हो।[१३] आपस्तम्ब ने एक ही सूत्र में राजसूय के अधिकारी तथा फल का समाश्रित निरूपण किया है- **राजा स्वर्गकामो राजसूयेन यजते।**[१४] अतः स्वराज्य अथवा स्वर्ग की कामना करने वाले राजा को राजसूय यज्ञ करने का विधान विदित होता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में स्वर्ग की कामना से सम्पाद्य राजसूय यज्ञ वाजपेय के बाद किया जा सकता है। सम्भवतः इसीलिए उपर्युक्त दो मतों में दोनों को पृथक्-पृथक् अस्तित्व प्राप्त है।

विहित काल- सुदीर्घ काल तक चलने वाले राजसूय यज्ञ में अनुष्ठान-विधि से २१ अथवा ३३ मासों अर्थात् द्व्याधिक वर्षों का समय लगता है। कात्यायन के मत में राजसूय यज्ञ में ३३ मास का समय अपेक्षित है। जबकि बौधायन साढे सत्रह या साढे सोलह मासों में राजसूय की समष्टि मानते हैं-

---

[९] शांखायनश्रौतसूत्र, १५.१३.१

[१०] लाट्यायनश्रौतसूत्र, ९.१.१, सत्याषाढश्रौतसूत्र, १३.३, कात्यायनश्रौतसूत्र, १५.१.१

[११] आश्वलायनश्रौतसूत्र, ९.९.१९

[१२] शतपथब्राह्मण, ९.३.४.८

[१३] अनिष्ठितो वाजपेयेन। (कात्यायनश्रौतसूत्र, १५.१.१)

[१४] आपस्तम्बश्रौतसूत्र, १८.८.१

राजसूयोऽर्द्धसप्तदशैर्मासैः सन्तिष्ठतेऽर्धषोडशैर्वा।[१५]

राजसूय यज्ञ के लिए ३३ मासों का समय अपेक्षित मानने वाले कात्यायन ने प्रयुग् संज्ञक हविर्याग को द्वादश मासों में सम्पाद्य स्वीकार किया है।[१६]

राजसूय सम्बन्धी चातुर्मास्य-याग- फाल्गुन मास को शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ किये गये राजसूय याग में पूर्णिमा-पर्यन्त यथोक्त विधियों का अनुष्ठान करने के पश्चात् फाल्गुन की पूर्णिमा को चातुर्मास्यों का प्रारम्भ होता है जो वर्षपर्यन्त अनुष्ठेय है- **आदित्यं चरुमित्येताभिरन्वहमिष्ट्वा चातुर्मास्यान्यालभते। तैः संवत्सरं यजते।**[१७]

अतः वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध तथा शुनासीरीय संज्ञक चातुर्मास्यों का विशिष्ट प्रयोग करते हुए नित्य चातुर्मास्य, दर्शपौर्णमासादि नित्यानुष्ठानों का सम्पादन करते रहना चाहिए। इस प्रकार फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा को शुनासीरीय पर्व के साथ चातुर्मास्यों की परिसमाप्ति होती है। इसके पश्चात् अर्थात् दूसरे वर्ष इन्द्रातुरीय पंचवातीय अपामार्ग आदि विविध हवनों का विधान है।

इन्द्रातुरीय, पंचवातीय, अपामार्ग-हवन- पंचवातीय हवन के साथ ही इन्द्रातुरीय हवन का विधान है। इन दोनों हवनों के क्रम में स्वल्प मतभेद है। शतपथ ने पंचवातीय के पूर्व ही इसका निर्देश किया है जबकि कुछ आचार्य इसका विधान पंचवातीय के पश्चात् करते हैं।[१८]

शतपथब्राह्मण के अनुसार अग्नि को अष्टकपालपुरोडाश, वरुण को यव, रुद्र को गवेधुक-चरु, इन्द्र के लिए वहिनी गो के दही का हवन किया जाता है। '**अनडुह्यै वहलाया ऐन्द्रं दधिर्भवति**'[१९] इसमें गार्हपत्याग्नि से आहवनीय में अग्न्युद्धरण-पूर्वक आहवनीयाग्नि के पाँच विभाग करके मध्याग्नि से चतुर्दिक्षुतः अग्नि का स्थापन किया जाता है। तत्पश्चात् आज्यसंस्कार पूर्वक पूर्व-पश्चिम दक्षिण-उत्तर तथा मध्य की अग्नि

---

[१५] बोधायनश्रौतसूत्र, २६.२

[१६] कात्यायन यज्ञपद्धति विमर्श, पृ. ३५६

[१७] आपस्तम्बश्रौतसूत्र, १८.९.३.४

[१८] शतपथब्राह्मण, ५.२.३.१३

[१९] तदेव, ५.२.३.१३

पर क्रमशः आहुतियों तथा प्राष्टिवाह या पंचवाह रथ की दक्षिणा का विधान है।

व्युष्टायां पुराग्निहोत्रादपामार्गहोमेन चरन्ति।[२०]

सत्याषाढ श्रौतसूत्र के अनुसार अपामार्ग-होम रात्रि के समय होता है।[२१] इसके लिए दक्षिणाग्नि में अग्न्युद्धरण तथा अन्वाधान करके अपामार्गाहरण के अनन्तर हवि-संस्कार-जन्य आहुति से हवन करके राक्षसों के वध की कामना से उसी दिशा की ओर स्रुवा फेंक दिया जाता है जिस दिशा की ओर हवन के लिए गये हों। इस हवन के पश्चात् मुड़कर न देखते हुए वापस आने का विधान है।

रत्नहविर्याग- द्वादशरत्नहविर्याग में बारह रत्नहवियों का अनुष्ठान बारह दिनों में किया जाता है।[२२]

रत्निनां हवींषि कहकर जिन द्वादश हवियों का विधान किया गया है उनका सम्पादन द्वादश-रत्नों के घर जाकर किया जाता है। सत्याषाढ श्रौतसूत्र में त्रयोदश रत्न हवियों का सङ्केत किया गया है जबकि बौधायन ने द्वादश रत्नहवियों का ही ग्रहण किया है।[२३] शतपथब्राह्मण[२४] के इन द्वादश रत्नहवियों के यागस्थल, देवता-द्रव्य तथा दक्षिणा का विस्तृत विधान प्राप्त होता है। कात्यायन के अनुसार बारह रत्न इस प्रकार है- यजमान, सेनापति, पुरोहित, महारानी, सूत, ग्रामणी, कंचुकी, संग्रहीता (कोषपाल या सारवि), अक्षावाप (द्यूत का अधीक्षक), गोविकर्ता (शिकारी), दूत या पालागल एवं परिवृक्ता (निरादृत रानी)। इसी प्रकार क्रम से देवता ये हैं- इन्द्र, अग्नि, अनीकवान्, बृहस्पति, अदिति, वरुण, मरुत, सविता, अश्विनी, रुद्र (अक्षावाप एवं गोविकर्ता के लिए), अग्नि, निर्ऋति। दक्षिणा की मात्रा भी पृथक्-पृथक् होती है।[२५] शतपथ ब्राह्मणाधृत द्वादश रत्नहवियों के यागस्थल, देवता, हविर्द्रव्य तथा दक्षिणा को

---

[२०] शतपथब्राह्मण, ५.२.३.१४, अथापामर्गहोमं जुहोति। आपस्तम्बश्रौतसूत्र, १८.९.१५

[२१] निशायामपामार्गहीनेन चरन्ति। (सत्याषाढश्रौतसूत्र, १३.३.३२)

[२२] बार्हस्पत्यं चरुमिति द्वादशान्वहं रत्निनां हवींषि। यस्य गृहे निर्वपति तत इष्टिपरिवेषणं दक्षिणा च। (आपस्तम्बश्रौतसूत्र, १८.१०.१२-१३)

[२३] सत्याषाढश्रौतसूत्र, १३.४.१, बौधायनश्रौतसूत्र, २३.१

[२४] शतपथब्राह्मण, ५.२.५१-१३

[२५] धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-१, पृ. ४३२

समग्रित रूप में निम्नवत् देखा जा सकता है-

यागगृह	**देवता**	**हविर्द्रव्य**	**दक्षिणा**
सेनापति	अग्निरनीकवान्	अष्टकपालपुरोडाश	सुवर्ण
पुरोहित	बृहस्पति	चरु	श्वेतपृष्ठा गौ
स्वगृह	इन्द्र	एकादशकपालपुरोडाश	ऋषभ
प्रथमपरिणीता पत्नी	अदिति	चरु	धेनु
सूत	वरुण	चरु (यव का)	अश्व
ग्रामणी (ग्रामनेता)	मरुत्	सप्तकपालपुरोडाश	विचित्रवर्णा गौ
प्रतीहार	सविता	द्वादशकपालपुरोडाश	श्वेतवृषभ
रथयोजक	अश्वि	द्विकपालपुरोडाश	युग्म गौ
परिवेषक	पूषा	चरु	श्याम गौ
स्वगृह	रुद्र	चरु (गवेधुक का)	श्वेतबाहु गौ आदि
दूत	अध्वदेव	आज्य	धनुष
अपुत्रा पत्नी	निर्ऋति	चरु (कृष्णव्रीहि का)	रुग्णा गौ

इस प्रकार उपर्युक्त द्वादश रत्नहवियों के पश्चात् सोमारौद्रयाग-पूर्वक अभिषेचनीय और दशपेय संज्ञक दो सोम याग किये जाते हैं अतः सम्प्रति इनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

सोमारौद्रयाग- शतपथ ब्राह्मण में रत्नहविर्याग के पश्चात् सोमारौद्रयाग करने का स्पष्ट विधान किया गया है- **उपरिष्टाद्रत्नानां सोमारौद्रेण यजते।**[२६]

फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को अनुष्ठेय इस याग में श्वेत गौ के दुग्ध में चरु बनाकर सोमारौद्र देवता के निमित्त याग करके उसी गो की दक्षिणा का विधान है।[२७] आपस्तम्ब ने इसी दिन चरु बनाकर मैत्राबृहस्पति के निमित्त याग का विधान किया है- **मैत्राबार्हस्पत्या दीक्षणीया।**[२८] अभिषेचनीयोक्थ्य की दीक्षा के रूप में

[२६] शतपथब्राह्मण, ५.२.६.१

[२७] आपस्तम्बश्रौतसूत्र, १८.११.१-५

[२८] तदेव, १८.११.८

मैत्राबार्हस्पत्य याग के अनन्तर अभिषेचनीय संसृपा तथा दशपेय याग का विधान किया गया है।

राजसूय यज्ञ के कई भागों एवं अङ्गों के कृत्यों में भी दक्षिणा देने का विधान है, किन्तु अभिषेचनीय एवं दशपेय कृत्यों में विशिष्ट दक्षिणाएँ दी जाती हैं। अभिषेचनीय कृत्य में ३२,००० गायें चार प्रमुख पुरोहितों को, १६,००० प्रथम सहायकों को, ८००० आगे के चार सहायकों को तथा ४००० अन्तिम चार सहायकों को दी जाती हैं। इस प्रकार होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा एवं उद्गाता में प्रत्येक को ३२,००० गायें, मैत्रावरुण (होता के प्रथम सहायक), प्रतिप्रस्थाता (अध्वर्यु के प्रथम सहायक), ब्राह्मणच्छंसी (ब्रह्मा के प्रथम सहायक) एवं प्रस्तोता (उद्गाता के प्रथम सहायक) में प्रत्येक को १६,००० गायें तथा आगे के चार सहायक अर्थात् अच्छावाक, नेष्टा, आग्नीध्र एवं प्रतिहर्ता में प्रत्येक को ८,००० एवं अन्तिम चार अर्थात् ग्रावस्तुत्, उन्नेता, पोता एवं सुब्रह्मण्य में प्रत्येक को ८,००० गायें दी जाती हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर २,४०,००० गायें दी जाती हैं। दशपेय कृत्य के पश्चात् १००० गायें दी जाती हैं और १६ पुरोहितों को विशिष्ट दक्षिणा दी जाती है।[२९]

देवव्रत- दशपेय कृत्य में अवभृथ स्नान के पश्चात् वर्ष भर तक राजा को कुछ व्रत करने पड़ते हैं, यथा- वह नित्य स्नान के लिए जल में डुबकी नहीं लगा सकता, केवल शरीर को रगड़ कर स्नान करें, वह सदैव दाँतों को स्वच्छ रखे, नाखून कटाये, बाल नहीं कटाये, केवल दाढ़ी एवं मूँछ स्वच्छ रखे, यज्ञभूमि में बाघ के चमड़े पर शयन करे, प्रतिदिन समिधा डाले, ब्राह्मणों को छोड़कर उसकी प्रजा साल भर तक केश नहीं कटाये, इसी प्रकार उसके घोड़ों के बाल भी वर्ष भर तक न काटे जायें। वर्ष भर तक राजा बिना पदत्राण के पृथिवी पर न चले।[३०]

शतपथब्राह्मण में देवव्रत के पश्चात् पंचबलियाग तथा द्वादश प्रयुक् संज्ञक हविर्यागों का निधान किया गया है- **उत्तरे शुक्ले पंचबलिः।**[३१] **स वै प्रयुजां**

---

[२९] आपस्तम्बश्रौतसूत्र, १८.३१.६.७, आश्वलायनश्रौतसूत्र, ९.४.७-२०, कात्यायनश्रौतसूत्र, १५.८.२३-२७, लाट्यायनश्रौतसूत्र, ९.२.१५

[३०] लाट्यायनश्रौतसूत्र, ९.२.१७

[३१] कात्यायनश्रौतसूत्र, १५.९.१

हविर्भिर्यजते तानि वै द्वादश भवन्ति।[३२]

अग्नि-इन्द्र-विश्वदेवा, मित्रावरुण तथा बृहस्पति को क्रमशः अष्टकपाल-एकदशकपाल पुरोडाश, चरु, पयस्या, तथा चरु से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर तथा मध्य में यजन करना चाहिए।

केशवपनीय अतिरात्र- ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी से पूर्णिमा-पर्यन्त पाँच दिनों में केशवपनीय अतिरात्र याग का सम्पादन होता है- **संवत्सरमग्निहोत्रं हुत्वा केशवपनीयेनातिरात्रेण यजते।**[३३] राजसूय याग-गत इस विशेष कृत्य में अतिरात्र या पवित्र सोम के समान ही कृत्य होते हैं। दीक्षा तथा दक्षिणा प्रकृतिवत् विहित है। इसके अनन्तर अवशिष्ट चार सोमयाग और होते हैं जिनकी सुत्या का दिन पूर्णिमा ही होता है। केशवपत्र-अतिरात्र के पश्चात् व्युष्टि-द्विरात्र का विधान है।

व्युष्टि द्विरात्र- अहीन यागत्वेन सम्पाद्य व्युष्टि द्विरात्र याग का आयोजन केशवपनीय-अत्रिरात्र के पश्चात् किया जाता है- **अनन्तरं व्युष्टि-द्विरात्रेण यजते।**[३४] इस याग का अनुष्ठान एक मास में सम्पन्न होता है इसमें सोलह दीक्षा, बारह उपसदा तथा दो सुत्याएँ होती हैं। व्युष्टि द्विरात्र के पश्चात् क्षत्रधृति संज्ञक सोमयाग किया जाता है।

क्षत्रधृति- राजसूय याग के समष्ट्युपक्रम में अग्निष्टोमसंस्थ क्षत्रधृति संज्ञक याग का विधान प्राप्त होता है- **क्षत्राणां धृतिस्त्रिष्टोमोऽग्निष्टोमः पंचापवर्गः।**[३५]

व्युष्टि-द्विरात्र के एक मास पश्चात् क्षत्र-धृति नामक कृत्य किया जाता है। इस कृत्य का सम्बन्ध शक्ति की सुस्थिति से है। यह अग्निष्टोम की विधि के अनुसार किया जाता है। शतपथब्राह्मण के अनुसार एक अन्य कृत्य था त्रैधातवी, जो उदवसानीया के स्थान पर किया जाता था[३६], जिसमें चावल एवं जौ की मिश्रित रोटी की आहुति दी जाती थी।

---

[३२] शतपथब्राह्मण, ५.४.४.१-२

[३३] पंचपूर्वेऽहत्रैकादशिनानालभन्ते। (आपस्तम्बश्रौतसूत्र, १८.२२.१७)

[३४] आपस्तम्बश्रौतसूत्र, १८.२२.१२

[३५] तदेव, १८.२२.१८, अथैतेन क्षत्रस्य धृतिना यजते। (शांखायनश्रौतसूत्र, १५.१०.८), अथैतस्मिन्नेव पक्षावशेषे क्षत्रस्य धृतिनाभिधत्ते। (बौधायनश्रौतसूत्र, २.६.२)

[३६] शतपथब्राह्मण, ५.५.६.९

क्षत्रधृति का अनुष्ठान एक मास में पूर्ण होता है। भाद्रपद में त्रिष्टोम अतिरात्र, आश्विन में ज्योतिष्टोम अतिरात्र तथा अन्त में कार्तिकमास में राजसूय याग में विहित चरकसौत्रामणी का अनुष्ठान किया जाता है। इस प्रकार राजसूय यज्ञ के अन्त में क्षत्रधृति संज्ञक सोमयाग सम्पन्न करके मैत्रावरुण के लिए अमिक्षा याग तथा अवभृथादि सामान्य क्रियाकलापों के साथ राजसूय यज्ञ समष्टि को प्राप्त हो जाता है।

राजसूय यज्ञ एक विशाल प्रक्रिया वाला यज्ञ है, उक्त लेख में महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं का ही अवलोकन किया गया है। किन्तु कर्मकाण्ड के रहस्योद्घाटन हेतु विशिष्टाध्ययन अपेक्षित है।

शतपथ के यज्ञसम्बन्धी शब्दों की निर्वचन प्रक्रिया (सामर्पण-भाष्य के परिप्रेक्ष्य में)

श्रीमती प्रीति[१]

वैदिक परम्परा में संहिताओं के पश्चात् जिन ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है वे ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं। इनकी महत्ता का दिग्दर्शन यह है कि बहुत से विद्वान् **"मन्त्रब्राह्मणं वेद इत्याचक्षते"**[२] अथवा **"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्"**[३] इत्यादि वचनों के आधार पर संहिता भाग के साथ-साथ ब्राह्मण-ग्रन्थों को भी वेद की संज्ञा से अभिहित करते हैं। इस परम्परा में कुमारिल भट्ट[४], मनुस्मृति के भाष्यकार मेधातिथि[५], मीमांसा सूत्रकार जैमिनि[६] आदि की अन्तहीन परम्परा है। यद्यपि इसमें विवाद हो सकता है कि इन्हें वेद माना जाए अथवा नहीं[७] किन्तु यह विवाद भी निर्विवाद रूप से इस तथ्य को स्थापित करने में सक्षम है कि भारतीय चिन्तन-परम्परा में संहिता भाग के पश्चात् यदि किसी ग्रन्थ को सर्वाधिक प्रामाणिक माना गया है तो वे वेदों के प्रथम व्याख्यान ब्राह्मण-ग्रन्थ ही हैं।

---

[१] **शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

[२] बोधायन गृह्यसूत्र- २/६/२

[३] आपस्तम्ब गृह्यसूत्र- ९/९/३९

[४] मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद इति नामधेयं षडङ्गमेकम् इति।- तन्त्रवार्तिक- १/३/१०

[५] वेदशब्देन ऋग्यजुःसामानि ब्राह्मणसंहितान्युच्यन्ते। मनुस्मृति- २/६ पर मेधातिथिभाष्य

[६] मीमांसा सूत्र- २/१/३२-३३

[७] १) स्तुतिनिन्दाव्याख्यानविनियोगादि ग्रन्थो ब्राह्मणम्।- काव्यमीमांसा- अध्याय २

२) न ब्राह्मणानां वेदसंज्ञा भवितुमर्हति। पुराणेतिहाससंज्ञकत्वाद् वेदव्याख्यानाद् ऋषिभिरुक्तत्वादनीश्वरोक्तत्वात् कात्यायनभिन्नैर्ऋषिभिर्वेदसंज्ञायामस्वीकृतत्वात् मनुष्यबुद्धिरचितत्वाच्चेति।- ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ० ९४

ब्राह्मणों के द्वारा की गई मन्त्र-व्याख्या अति उत्कृष्ट तथा विविध ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण है। इस सम्बन्ध में पूज्यपाद स्वामी विवेकानन्द जी महाराज का यह कथन सर्वथा सत्य है कि यदि इनकी (ब्राह्मण-ग्रन्थों की) व्याख्या को समझ लिया जाए तो वेदों के सम्बन्ध में मनु महाराज ने जो **"सर्वज्ञानमयो हि सः, सर्वं वेदात्प्रसिद्ध्यति"**[८] आदि वचन कहें हैं, वे वाक्य अर्थवाद नहीं अपितु अक्षरशः सत्य प्रतीत होने लगेंगे।[९] किन्तु महती विडम्बना है कि आर्षबुद्धि से रहित अधिसंख्य विद्वानों ने ब्राह्मण-ग्रन्थों को केवल कर्मकाण्डीय विनियोग तक सीमित रक्खा और उस आधार पर वैदिक मन्त्रों की कर्मकाण्डीय व्याख्या ही की।

स्वामी समर्पणानन्द जी इस प्रकार के मध्यकालीन व्याख्याकारों/भाष्यकारों की विनियोग पद्धति पर कुठाराघात करते हुए लिखते हैं कि- "वेदार्थ के सम्बन्ध में इन भाष्यकारों ने विनियोग नहीं अपितु दुर्नियोग किया है। वेद के अर्थ को भली-भाँति जानने के पश्चात् ही जहाँ विनियोग को देखना चाहिए था, इन भाष्यकारों ने विनियोग वाक्यों का अर्थ निश्चित करके पुनः वेदों को इसके पीछे चलाया और वेद जैसी ज्ञान-विज्ञान की अमूल्य निधि को समस्त संसार का उपहासपात्र (गडरियों के गीत) बना डाला।[१०]

जबकि महर्षि दयानन्द ने विश्वमञ्च पर उद्घोषित किया कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। हमारी सनातन परम्परा भी वेद को सभी विद्याओं का स्रोत मानती है। नाट्यशास्त्र, विमानशास्त्र, आयुर्वेद, व्याकरण आदि किसी भी ग्रन्थ पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि प्रायः सभी ग्रन्थकारों ने अपने शास्त्रों का उत्स एकस्वर से वेदों को ही स्वीकार किया है तो पुनः ऐसा कैसे सम्भव है कि वैदिक-मन्त्रों के व्याख्यानरूप ब्राह्मण-ग्रन्थ उनको केवल धार्मिक कर्मकाण्ड तक सीमित कर दें।

ब्राह्मण-ग्रन्थों के विषय में इसी लोकापवाद से पीड़ित होकर वैदिक साहित्य के अद्भुत् विद्वान् पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी ने इस समस्या के समाधानार्थ ब्राह्मण-ग्रन्थों में मुख्यतः शतपथ ब्राह्मण का भाष्य लिखना प्रारम्भ किया और सिद्ध किया कि

---

[८] मनुस्मृति- २/७ एवं १२/९७

[९] शतपथ ब्राह्मण, सामर्पणभाष्य, प्रथम खण्ड, भूमिका- पृ० ३

[१०] वेदों के सम्बन्ध में क्या जानों क्या भूलो, पृ० २०-२२

शतपथ केवल यज्ञ या कर्मकाण्ड का व्याख्यान-ग्रन्थ मात्र नहीं है अपितु यह जीवन-यज्ञ की व्याख्या है। स्वामी जी की व्याख्या शतपथ ब्राह्मण के जीवन-दर्शन के उन गूढ-रहस्यों को हस्तामलकवत् हमारे सम्मुख उपस्थापित करती है।

स्वामी समर्पणानन्द जी के अनुसार यदि शतपथ ब्राह्मण की विषय-वस्तु को देखा जाए तो ज्ञात होता है कि "सम्पूर्ण ब्राह्मण में यज्ञ की विद्या का वर्णन है पुनः इसे वेद का व्याख्यान-ग्रन्थ क्यों कहा जाए इसे तो यज्ञ का व्याख्यान-ग्रन्थ कहना चाहिए"। इस प्रश्न का समाधान पाने के लिए सर्वप्रथम यज्ञ शब्द को समझना आवश्यक है।[११] स्वामी समर्पणानन्द जी ने प्रथम काण्ड की भूमिका (ग्रन्थ परिचय) में इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहा है कि- "प्रायः यज्ञ का अर्थ अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त कर्मकाण्डगत क्रिया-कलाप लिया जाता है किन्तु यह घोर भ्रान्ति है। वस्तुतः यज्ञ शब्द का अर्थ अग्निहोत्र, अश्वमेधादि कुछ भी नहीं। यज्ञ शब्द का अर्थ तो है- संगठित समारम्भ (Organized Activity)। व्याकरण के अनुसार जो सङ्गतिकरण के साथ देवपूजा और दान ये दो शब्द लगे हैं वस्तुतः वे स्पष्टीकरणार्थ हैं। देवपूजा और दान, सङ्गतिकरण के ही दो रूपान्तरण हैं। तात्पर्य यह है कि भोजन ग्रहण करने से लेकर सार्वभौम साम्राज्य की स्थापना तक सम्पूर्ण संगठित कर्म यज्ञ ही हैं।[१२]

यज्ञ के इस व्यापक अर्थ को ध्यान में रखते हुए स्वामी जी महाराज ने शतपथ ब्राह्मण में यज्ञयि शब्दों के निर्वचन की जो व्याख्या प्रस्तुत की है वह अद्भुत है जिसके कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं-

१. <u>अध्वर</u>-

"देवान्ह वै यज्ञेन यजमानान्त्सपत्नाऽअसुरा दुधूर्षाञ्चक्रुस्ते दुधूर्षन्तऽएव न शेकुर्धूर्व्वितुं ते पराबभूवुस्तस्माद्यज्ञोऽध्वरो नाम"।[१३] अर्थात् जब देव यज्ञ कर रहे थे तो उनके शत्रु असुरों ने उस यज्ञ का विध्वंस करना चाहा (दुधूर्षाञ्चक्रुः) परन्तु विध्वंस की इच्छा करते हुए भी वे विध्वंस न कर सके। वे हार गए इसलिए यज्ञ का नाम अध्वर हुआ। स्वामी समर्पणानन्द जी के अनुसार यहाँ यह दिखाया गया है कि कितने ही उत्तम उद्देश्य से यज्ञ किया जाए परन्तु यदि उसमें हिंसा की भावना होगी तो वह

---

[११] शतपथ ब्राह्मण, सामर्पणभाष्य, प्रथम खण्ड, ग्रन्थ-परिचय- पृ० ६

[१२] वही

[१३] शतपथ ब्राह्मण- १/४/१/४०

निष्फल हो जाएगा। इसलिए अन्त की तीनों सामिधेनियाँ अध्वर शब्द वाली हैं और इसी का फल सोमयाग के समान है। इससे पता चलता है कि सोमयाग भी हिंसारहित है। शब्द भी है सौम्य- अध्वर।[१४]

२. अमावस्या-

"तद्यदेष एता रात्रिमिहामा वसति। तस्मादमावस्या नाम"।[१५] अर्थात् क्योंकि इस रात को वह (चन्द्रमा) यहाँ साथ रहता है इसलिए इसका नाम अमावस्या है। अमा = सह, वसति = निवास करता है, इस अर्थ में अमा+वस् धातु से अमावस्या शब्द बना है। अभिप्राय यह है कि इस रात चन्द्रमा सूर्य के साथ या सूर्य की सीध में रहता है। आपस्तम्बश्रौतसूत्र[१६], गोभिलगृह्यसूत्र[१७] एवं कोशग्रन्थों[१८] में भी अमावस्या का यही लक्षण प्राप्त होता है। जिसमें कहा गया है कि- वह रात्रि जब सूर्य एवं चन्द्रमा एक साथ निवास करते हैं, अमावस्या कहलाती है। यह वह तिथि है जिस पर सूर्य एवं चन्द्रमा एक दूसरे के सबसे अधिक निकट रहते हैं।

इस सम्बन्ध में यह जानना अतिमहत्त्वपूर्ण है कि- प्रायः ऐसा माना जाता है कि सौरमण्डल या अन्तरिक्षविज्ञान की प्रत्येक गतिविधि से सम्बन्धित जो भी शोध है वह सब आधुनिक विज्ञान की ही देन है। आजकल थोड़ा बहुत श्रेय आर्यभट्ट सरीखे भारतीय विद्वानों को भी दिया जाने लगा है किन्तु प्राचीनतम वैदिक साहित्य में शब्दों का ऐसा पारिभाषिकीकरण स्वयं इस बात को इंगित (प्रमाणित) करता है कि वैदिक ऋषियों को सौरमण्डल एवं अंतरिक्ष से सम्बन्धित सम्पूर्ण विज्ञान हस्तामलकवत् स्पष्ट था। इसलिए आज हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि इन तथ्यों को संसार के सम्मुख उपस्थापित करें।

---

[१४] शतपथ ब्राह्मण, सामर्पणभाष्य, प्रथम काण्ड, पृ० २९०

[१५] शतपथ ब्राह्मण- १/६/४/५

[१६] आपस्तम्भ श्रौतसूत्र- १/७/१

[१७] गोभिल गृह्यसूत्र- १/५/७

[१८] (क) अमा साहित्येन वसतश्चन्द्रार्कौ यस्यां सा अमावस्या- शब्दकल्पद्रुम

(ख) कलाहीने सानुमतिः पूर्णे राका निशाकरे।

अमावस्या त्वमावस्या दर्शः सूर्येन्दुसङ्गमः॥- अमरकोश

३. <u>उपस्थानम्</u>-

"तेषामुपस्थानं यदेव सायं प्रातराहवनीयमुप च तिष्ठतऽउप चास्ते तदेव तस्योपस्थानमथ। यदेव प्रतिपरेत्य गार्हपत्यमास्ते वा शेते वा तदेव तस्योपस्थानमथ यत्रैव संव्रजन्नन्वाहार्यपचनमुपस्मरेत्तदेव तं मनसोपतिष्ठेत तदेव तस्योपस्थानम्" ॥४॥

अथ प्रातः। अनशित्वा मुहूर्त्तं सभायामासित्वापि कामं पल्ययेत तदेव तस्योपस्थानमथ यत्रैव भस्मोद्धृतमुपनिगच्छेत्तदेव तस्योपस्थानमेवमु हास्यैता देवता उपस्थिता भवन्ति" ॥५॥[१९]

अर्थात् अब अग्नियों के उपस्थान का वर्णन करते हैं। सायं-प्रातः अग्निहोत्र के लिए प्रतिदिन आहवनीय के पास उपस्थित होकर वहाँ बैठना ही उपस्थान है। आहवनीय के पास से उठकर गार्हपत्य के पास बैठना या लेटना यही उसका उपस्थान है। यदि कहीं बाहर जाना हो तो उस समय अन्वाहार्य-पचन का स्मरण करे उसके पास मन से पहुँचना ही उसका उपस्थान है।

प्रातःकाल बिना भोजन किए मुहूर्त भर सभा में सभ्याग्नि के पास बैठकर पुनः चाहे उठ जाए यही इसका उपस्थान है और घर में जहाँ कहीं गार्हपत्यादि की राख फेंकी हो, उसे अवश्य देखना चाहिए यह आवसथ्याग्नि का उपस्थान है।

उपस्थान के सम्बन्ध में स्वामी समर्पणानन्द जी के भाष्य को यदि देखा जाए तो वे उपस्थान शब्द से सद्यःपूर्व 'असन् पांसवः'[२०] शब्द की व्याख्या करते हैं। उपस्थान शब्द को इसके साथ जोड़कर ही समझना श्रेयस्कर होगा। स्वामी जी कहते हैं कि परिवार में दम्पती का आदर्श है कि वे अपने आप को असन् कर दें, एक दूसरे में अपनी सत्ता को मिटा दें। परिवार या संगठन में यदि कोई सम्मिलित होना चाहता है तो उसे इसी आदर्श पर चलना चाहिए।

इस प्रकार के गुण की पहचान पांसवः शब्द से की गई है कि पकी-पकी के सब साथी हैं, राख का साथी कोई-कोई होता है अर्थात् मनुष्य की जीवन यात्रा में नाना प्रकार के गुणों की ज्योति तो सब देखते हैं किन्तु जब उसकी राख में भी प्रेम की अग्नि जलती रहे तो समझो कि आवसथ्याग्नि ठीक जल रही है इसलिए इस अग्नि का नाम

---

[१९] शतपथ ब्राह्मण- २/३/२/४-५

[२०] शतपथ ब्राह्मण, सामर्पणभाष्य, द्वितीय काण्ड, पृ० १४५

'असन् पासवः' है।

इस प्रकार की अग्नियों के उपस्थान अर्थात् देखभाल के लिए उपस्थित होना ही उपस्थान है। भाव यह है कि आहवनीय में प्रतिदिन आहुति करना तो कर्तव्य है ही परन्तु उसके साथ-साथ अपने कुल-गौरव तथा राष्ट्र-गौरव का स्मरण करना और निराहार होकर राष्ट्र, समाज एवं परिवार के विषय में सोचना भी उपस्थान ही है। इस प्रकार की भावनाओं को जो जागृत रखता है, समय पड़ने पर ये भावनाएँ स्वयं उसके काम आती हैं और तुरन्त उपस्थित हो जाती हैं।[२१]

<u>४. त्र्यम्बका</u>-

"अम्बिका ह वै नामास्य स्वसा तयास्यैष सह भागस्तद्यदस्यैष स्त्रिया सह भागस्तस्मात्त्र्यम्बका नाम"।[२२] अर्थात् अम्बिका नाम की रुद्र की बहिन है। उसके साथ इस रुद्र देव का यह भाग है। यहाँ इस यज्ञ में स्त्री के साथ भाग है इसलिए इसका नाम त्र्यम्बक-याग है।

स्वामी समर्पणानन्द जी का भाष्य इस त्र्यम्बका शब्द की एक भिन्न दृष्टिकोण से व्याख्या प्रस्तुत करता है। वे कहते हैं कि यह जो त्र्यम्बक-याग है उसमें रुद्र की बहिन अम्बिका मुख्य है इसलिए यह त्र्यम्बक-याग है। भाव यह है कि स्त्री वात्सल्य की मूर्त्ति है और घायलों की सेवा करने वालों को वात्सल्य-मूर्त्ति बनाना है। इस अम्बिका विभाग का काम है सबको सुख की नींद सुलाना। कभी-कभी अन्दर छिपे हुए शल्य को निकालने के लिए रुलाना भी पड़ता है। इस अंश में वह रुद्र है किन्तु है अम्बिका-सहित ही। उसका हृदय वात्सल्य से परिपूर्ण है। इसलिए शिक्षा में जितने मस्तिष्क रुद्र को दिए जाते हैं वे अम्बिका सहित रुद्र को दिए जाते हैं। इसी मर्म को न जानकर भविष्य-पुराण ने लिख दिया गया है कि शिव जी ने अपनी बहिन से विवाह किया।[२३]

५. <u>दक्षिणा</u>-

"स एष यज्ञो हतो न ददक्षे। तं देवा दक्षिणाभिरदक्षयंस्तद्यदेनं दक्षिणाभिरदक्षयंस्तस्माद्दक्षिणा नाम"।[२४] वस्तुतः यज्ञ क्या है? एक प्रकार की हत्या

---

[२१] शतपथ ब्राह्मण, सामर्पणभाष्य, द्वितीय काण्ड, पृ० १४६

[२२] शतपथ ब्राह्मण- २/६/२/९

[२३] शतपथ ब्राह्मण, सामर्पणभाष्य, द्वितीय काण्ड, पृ० ३८०

[२४] शतपथ ब्राह्मण- २/२/२/२

ही तो है अर्थात् रस निकालने के लिए पदार्थों का अभिषव करना, पशु रूप बालक के नाना प्रकार के दुर्गुणों को दूर करते हुए सद्गुणों का आधान करना भी एक हत्या ही है। इस प्रकार जब यज्ञ शक्ति-समृद्ध नहीं रहा तब देवों ने इस यज्ञ को दक्षिणाओं द्वारा सम्पन्न कर दिया इसलिए इसका नाम दक्षिणा है।

इस सम्बन्ध में स्वामी समर्पणानन्द जी अपने भाष्य में कहते हैं कि- बालक के मस्तिष्क तथा शरीर को अग्निषोम देवता द्वारा सुसंस्कृत करने वाले लोग बालक को शिक्षित करने वाले तथा परीक्षा लेने वाले और तृतीय सवन में तद्विशेषज्ञों की सङ्गति में रखकर उन्हें कार्य योग्य बनाने वाले, विश्वविद्यालयों के कार्यकर्त्ता, बालक के शरीर तथा बुद्धियों को ठीक मार्ग पर चलाने वाले विद्वान् लोग, ये सब जो परीश्रम करते हैं तो सारे संगठन परिश्रम द्वारा शक्ति व्यय करते हैं किन्तु उत्तम दक्षिणा पाकर वे पुनः शक्ति सम्पन्न हो जाते हैं यही दक्षिणा का दक्षिणात्व है।[२५]

६. वेदि -

"तेनेमां सर्वां पृथिवीं समविन्दन्त तद्यदेनेनेमां सर्वां पृथिवीं समविन्दत तदस्माद्वेदिर्नाम"।[२६]

"अत्र विष्णुमन्वविन्दंस्तस्माद्वेदिर्नाम"।[२७] अर्थात् यज्ञाग्नि के द्वारा देवताओं ने समस्त पृथ्वी को प्राप्त कर लिया इसलिए अग्निकुण्ड का नाम वेदि है। ओषधियों ने विष्णु अर्थात् यज्ञ को प्राप्त किया इसलिए विष्णु भी वेदि हैं। विष्णु के उल्लेख से वेदि में किए जाने वाले यज्ञ की व्यापकता दृष्टिगोचर होती है।

स्वामी समर्पणानन्द जी ने वेदि शब्द की व्याख्या बड़े ही व्यापक रूप से की है- जब देवताओं ने असुरों से वेदि अर्थात् विष्णु के जितनी भूमि का अधिकार प्राप्त कर लिया तो उसे छन्दों से घेरकर उन्होने अपना विस्तार आरम्भ किया और अन्त में सम्पूर्ण पृथ्वी को पा गए। इस सम्बन्ध में स्वामी जी बादशाह फर्रूखसियार से अंग्रेजों द्वारा प्राप्त की गई सूरत में छोटी-सी भूमि का उदाहरण देते हुए इस घटना को स्पष्ट करते हैं।[२८]

---

[२५] शतपथ ब्राह्मण, सामर्पणभाष्य, द्वितीय काण्ड, पृ० ७३-७४

[२६] शतपथ ब्राह्मण- १/२/५/७

[२७] शतपथ ब्राह्मण- १/२/५/१०

[२८] शतपथ ब्राह्मण, सामर्पणभाष्य, प्रथम काण्ड, पृ० १६३-१७०

इस प्रकार संगठन की उन्नति के लिए पहले तो एक समान उद्देश्य (विष्णु) का सामने होना और उस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए हृदय में प्रबल अग्नि का होना तो आवश्यक है ही किन्तु जब तक उस उद्देश्य को छन्द अर्थात् Discipline से नहीं बाँधेंगे तब तक संगठन सफल नहीं हो सकता। इसलिए संगठन के साथ-साथ आचरण पद्धति का होना भी परमावश्यक है। तभी तो वेदि नीचे से वामन (स्वल्पाकार) होती है और ऊपर जाकर विराट् (बृहदाकार) स्वरूप ग्रहण कर लेती है।[२१]

उपसंहार-

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शतपथ-ब्राह्मण के यज्ञ-सम्बन्धी रहस्य को समझने के लिए तीन बातों का ज्ञान परम आवश्यक है-

१. मन्त्रों का अर्थ।

२. यज्ञ की प्रक्रिया।

३. मन्त्रार्थ और क्रिया का परस्पर सम्बन्ध।

साथ ही इस क्रम में शतपथ-ब्राह्मणकार ने जिन वैदिकशब्दों एवं उपलक्षणों का प्रयोग किया है, वह केवल कर्मकाण्ड तक सीमित नहीं है अपितु कर्मकाण्ड के साथ-साथ शतपथ-ब्राह्मण में राजनीति, शिक्षाशास्त्र, समाजशास्त्र, युद्धकला आदि गूढतम तथ्यों को भी सीधी-सादी क्रियाओं द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। यद्यपि उपलक्षणों द्वारा भाव व्यक्त करने की यह पद्धति संसारभर के साहित्य में देखने में आती है, किन्तु पूर्वापर सम्बद्ध व्याख्यान के व्याख्यान-उपलक्षण द्वारा कदाचित् अन्यत्र किसी साहित्य में व्यक्त नहीं किए गए किन्तु शतपथ-ब्राह्मण में यही किया गया है। इस दृष्टि से यह ग्रन्थ समस्त विश्व के साहित्य में अद्वितीय स्थान रखता है। इतने दिनों तक रुधिर-माँस-हड्डी एवं कराहते पशुओं के आर्तनाद के नीचे दबी पड़ी इस रत्न-राशि को परमपूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी ने प्रकाशित करने का जो प्रयास किया है वह अद्भुत है।

---

[२१] वही

शतपथ ब्राह्मण में पिण्डपितृयज्ञः पं.बुद्धदेव विद्यालंकार की दृष्टि में

सन्दीप[१]

शतपथ ब्राह्मण में पिण्डपितृ यज्ञ नामक विषय का आरम्भ एक कथा से किया गया है। कथा में प्रजापति के पास सब भूत उपस्थित हुए।[२] भूत शब्द से अभिप्राय प्रजा से है।[३] समस्त प्रजा ने प्रजापति से कहा- हम कैसे जिएंगे हमारी जीविका का विधान बनाइए। समस्त प्रजा को पांच भागों में बांटकर प्रजापति ने उनके लिए भोजन आदि व्यवस्था बनाई। इस प्रजा में देव, पितर, मनुष्य, पशु तथा असुर थे।

सर्वप्रथम देव यज्ञोपवीति[४] होकर तथा दाहिना घुटना आगे को मोड़ कर, प्रजापति के सामने बैठ गए। तब प्रजापति ने देवों से कहा- **यज्ञ ही तुम्हारा अन्न है, अमृतत्व ही तुम्हारा बल है और सूर्य तुम्हारी ज्योति।**[५] इस प्रकरण में देव शब्द का अर्थ **देवो दानाद्वा**[६] अर्थात् देने वाले। यजन ही उनका कर्तव्य कर्म है तथा सूर्य ज्योति

---

[१] **शोध छात्र, वेद-विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।**

[२] प्रजापतिं वै भूतान्युपासीदन्। शतपथ ब्राह्मण काण्ड २, अध्याय ४, ब्राह्मण २, कण्डिका१

[३] प्रजा वै भूतानि। शत० ब्रा० २.४.२.१

[४] ब्रह्मसूत्र के धारण के तीन प्रकार है। (क) ब्रह्मकर्मों में जब जनेऊ को बाये कंधे के ऊपर से दाहिने हाथ के नीचे करके पहना जाता है तब इसकी संज्ञा यज्ञोपवीत होती है। (ख) मानुष कर्म में इसे माला के समान गले मे धारण करना नीवीत कहलाता है। (ग) पितर कर्म में यज्ञोपवीत से विपरीत स्वरूप में अर्थात् दाहिने कंधे के उपर और बाये कंधे के नीचे धारण करना प्राचीनावीत कहलाता है॥

[५] यज्ञो वोऽन्नममृतत्वं व ऊर्ग्वः सूर्यो वो ज्योतिरिति। शत० ब्रा० २.४.२.१

[६] निरुक्त

से ये गति करते हैं। इन तीन गुणों से यह बात समझनी चाहिए कि पंचमहाभूत अथवा चन्द्रमादि जो सूर्य के कारण गति करके सृष्टि के संचालन में सहयोग करते हैं और मनुष्यादि प्रजा जिसके कारण जीवन को प्राप्त होती है। सूर्य के कारण ही सभी प्राकृतिक व्यवहार सिद्ध होते हैं। सूर्य ही इसका आत्मा है।[७]

देवों के पश्चात् पितर लोग प्रजापति के सामने प्राचीनावीति[८] होकर तथा बायाँ घुटना मोड़ कर बैठ गए। उनसे प्रजापति ने कहा- **तुम्हें महीने-महीने[९] भोजन मिलेगा उस भोजन का नाम स्वधा[१०] होगा, मन तुम्हारी गति होगी और चन्द्रमा तुम्हारी ज्योति।**[११] यह प्रकरण व्यावहारिक शिक्षा से भरा हुआ है। पितृ शब्द का अर्थ क्षीणशक्ति देव समझना चाहिए।[१२] जब वन में वास कर रहे माता-पिता, गुरु, ऋषि आदि वृद्धजनों को महीने में एक बार अन्नादि वस्तुएं दी जाती है इसका नाम स्वधा है। स्व शब्द से स्वजन तथा धा से अभिप्राय धारण करना। इस प्रकार स्वजनों का धारण अर्थात् पितरों को दिए जाने वाले अन्नादि सामग्री से है। मन ही पितरों की गति है। इससे भी यही आशय है कि शरीर शक्ति भले ही क्षीण हो गई हो किन्तु अध्यात्म-प्रसाद तो मन का विषय है। ध्यान, उपासना आदि आध्यात्मिक कार्य मन से ही सम्पन्न होते हैं। चन्द्रमा पितरों की ज्योति है। इसका भाव भी यही है कि चन्द्रमा अर्थात् पुत्र[१३] से ही वे गतिमान् होते हैं। यहाँ आध्यात्मिक अर्थ यह भी ग्रहण हो सकता है कि जैसे चन्द्रमा सूर्य से प्रकाशित होकर प्रकृति में रस या सार को उत्पन्न करता है। सोम्यता ही चन्द्रमा का स्वभाव है पितर लोग भी सोम्यभाव से सूर्य अर्थात्

---

[७] सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। यजुर्वेद १३.४६ ।

[८] इस शब्द को टिपणी संख्या ४ के खण्ड ग में स्पष्ट कर दिया गया है।

[९] महीने-महीने से अभिप्राय अमावस्या के दिन से है। यह विधान देव तथा पितर को दिये जाने वाले त्याग स्वरूप भोजन में भेद कथन की दृष्टि से है।

[१०] मासि मासि वोऽशनं स्वधा। शत० ब्रा० २.४.२.२ ।

[११] मनोजवो वश्चन्द्रमा वो ज्योतिरिति। शत० ब्रा० २.४.२.२ ।

[१२] शतपथ ब्राह्मण के द्वितीय काण्ड के पिण्ड-पितृ यज्ञ की प्रथम कण्डिका पर स्वामी समर्पणानन्द द्वारा **प्रतिबोध** नाम से की गई व्याख्या। समर्पण शोध संस्थान से सन् १९९२ मे प्रकाशित पुस्तक के पृष्ठ संख्या २०७।

[१३] वही पृष्ठ संख्या २०५ संगति सूत्र के अन्तर्गत।

ईश्वर के प्रकाश से स्वयं प्रकाशित होकर, प्रजाओं में रस अर्थात् प्रेम, करुणा, दयादि सोम्यभावों को जागृत करते हैं।

इसके उपरान्त प्रजापति के समीप मनुष्य लोग भिक्षुक की भाँति गोद में कपड़ा फैलाकर बैठ गए उन मनुष्यों से प्रजापति ने कहा- **प्रातः सायं तुम्हारा भोजन होगा, सन्तान ही तुम्हारी मृत्यु और अग्नि तुम्हारे लिए ज्योति है।**[१४] यहाँ प्रकरण में मनुष्य के जीवन से सम्बन्धित कुछ अनिवार्य तथ्यों का ब्राह्मणकार ने विधान किया है। सबसे पहले भोजन विधान है- **प्रातः और सायं काल अर्थात् सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त से पहले भोजन कर लेना चाहिए।**[१५] संतान मनुष्यों के लिए मृत्यु कैसे है? यह भी विचारणीय बात है। मृत्यु से अभिप्राय दुःख से है संतान के पालन में मनुष्य को सदा मारा-मारी करनी पड़ती है। वह सदा उनके पालन पोषण के लिए कठोर परिश्रम करता रहता है इस परिश्रम से उसे हमेशा अपने सामने संकट दिखाई देता है यही भाव उसके लिए मृत्यु है। अग्नि ज्योति स्वरूप है इसका अभिप्राय यह है कि अग्नि से मनुष्य की गति होती है। भोजन का बनाना हो या चाहे गमन, दोनों ही अग्नि से सिद्ध होते हैं और वर्तमान काल में अग्नि के प्रयोग से मनुष्य की इस संसार में सर्वत्र गति दिखाई देती ही है। अग्नि का यही वर्चस्व है जिसके कारण मनुष्य ने विभिन्न प्रकार के सुख संसाधन निर्माण कर लिए हैं।

मनुष्य के पश्चात् पशु प्रजापति की शरण में पहुंचे और प्रजापति ने **उन्हें स्वेच्छाचारी कर दिया।**[१६] **समय या असमय तुम्हें जब भी मिले अवश्य ही खा लो।**[१७] इसलिए पशुओं को जब भी मिलता है खा लेते हैं। यहाँ भाव स्पष्ट ही है।

अन्त में असुर प्रजापति के पास पहुंचे। उन्होंने प्रजापति से **अंधकार और माया प्राप्त की।**[१८] यह अत्यंत ही निम्न कोटि की प्रजा है, जो अंधकार में उत्पन्न होती है। इनमें निर्माण शक्ति इतनी होती है कि यह लाखों की संख्या में थोड़े ही समय में बन जाते है। इन्हें क्षुद्र कीट के स्वरूप में समझा जा सकता है। इन्हें असुर इसीलिए कहते हैं क्योंकि यह सृष्टि के प्रवाह में कोई उपयोगी कार्य नहीं करते। सूर्य के प्रकाश

[१४] सायं प्रातर्वोऽशनं प्रजा वो मृत्युर्वोऽग्निर्वो ज्योतिरिति। शत० ब्रा० २.४.२.३ ।

[१५] तस्मात उ सायं प्रातराशी एव स्यात्। शत० ब्रा० २.४.२.६ ।

[१६] तेभ्यः स्वेषमेव चकार। शत० ब्रा० २.४.२.४ ।

[१७] यदैव यूयं कदा च लभाध्वै यदि काले यद्यनाकालेऽथैवाश्नाथेति। शत० ब्रा० २.४.२.४।

[१८] तेभ्यः तमश्च मायां च प्रददावस्ति । शत० ब्रा० २.४.२.५ ।

में इनका नाश हो जाता है। ये प्रजाएँ वैसे ही जीवन बिताती हैं जैसा प्रजापति ने इनके लिए विधान किया था।

देवलोग, पितर और पशु प्रजापति के नियमों का उल्लंघन नहीं करते। केवल मनुष्य ही कुछ अतिक्रमण करते हैं।[१९] इसलिए **मनुष्यों में जो (शरीर से) स्थूल अर्थात् मोटा होता है वह अशुभ आचरण से ही स्थूल होता है।**[२०] इसलिए मनुष्य को सायं प्रातः खाने वाला ही होना चाहिए। जो ऐसा जान कर **सायं प्रातः भोजन करने वाला होता है वह संपूर्ण आयु वाला होता है।**[२१] इस प्रकार जो जैसा व्यवहार करता है वह वैसा ही हो जाता है। **देव लोग सत्य की रक्षा करते हैं।**[२२] तथा **उन देवों के सत्य का जो ब्राह्मण व्यवहार करता है वह भी वैसा ही देवों के भांति ब्रह्मवर्चस् से युक्त हो जाता है।**[२३]

"संसार में दो प्रकार के व्यवहार होते हैं तीसरा कोई व्यवहार नहीं है- सत्य और अनृत । सत्य स्वरूप वाले देव और अनृत स्वरूप वाले मनुष्य होते हैं।"[२४] मनुष्य को सत्य ही व्यवहार करना चाहिए। **जो देवों के इस सत्य व्यवहार का आचरण करता है वह देवों के समान यश वाला हो जाता है।**[२५]

सभी प्रजाओं के लिये भोजन की व्यवस्था प्रजापति ने कर दी। अब भोजन आदि व्यवस्था के उपरान्त याग के मुख्य विषय का प्रतिपादन निम्न बिन्दुओं से करते हैं-

मासि-मासि एव पितृभ्यो ददतः[२६] - महीने में एक बार पितरों को भोजन दिया जाता है। इसका अभिप्राय यही है कि जो वृद्ध माता-पिता वानप्रस्थ में अपना

---

[१९] नैव देव अतिक्रमन्ति। न पितरो न पशवो मनुष्या एवैकेऽतिक्रमन्ति।

[२०] यो मनुष्याणां मेद्यत्यशुभे मेद्यति। शत० ब्रा० २.४.२.६ ।

[२१] यो हैवं विद्वान्त्सायंप्रातराशी भवति सर्वं हैवायुरिति। शत० ब्रा० २.४.२.६ ।

[२२] देवसत्यं गोपायति। शत० ब्रा० २.४.२.६ ।

[२३] तद्धैतत्तेजो नाम ब्रह्मणं य एतस्य व्रतं शक्नोति चरितुम्। शत० ब्रा० २.४.२.६ ।

[२४] द्वयं वै इदं न तृतीयमस्ति। सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या। शत० ब्रा० १.१.१.४ ।

[२५] एतद्ध वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं तस्मात्ते यशो यशो ह भवति। शत० ब्रा० १.१.१.५।

[२६] शत० ब्रा० २.४.२.७।

जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उन्हें माहभर का राशन एक साथ दे दिया जाना चाहिये। गृहस्थ पुरुष के अनेक कार्य होते हैं सो एक व्यवस्था के लिये यह नियम बनाया गया है ऐसा जानना चाहिए।

स वाऽअपराह्णे ददाति[२७] – पिण्डपितृ-याग का काल अपराह्ण का है। दिन के तीन भाग हैं। देव कर्म प्रातः काल होते हैं सो वह पूर्वाह्ण तथा मनुष्यों के कर्म, देव कर्म के पश्चात् होते हैं सो सामान्य मनुष्यों के काम मध्याह्न में होते हैं। इसी प्रकार कार्य करते करते जो क्षीण हो गए हैं वे लोग पितर कहलाते हैं। अर्थात् दिन का उतरता समय पितरों का है, इसका तात्पर्य शरीर की अवस्था से जानना चाहिए। इसीलिए जीवन के उतरते अपराह्ण काल में पितरों को भाग (सेवा) देता है।

सकृत्फलीकरोति[२८]- यहाँ कुछ बातें हैं जो विचार की जानी चाहिए। जैसे प्राचीनावीती होकर व्रीहि (धान) का ग्रहण करना, पितरों के अन्न का एक बार ही फलीकरण होना और पितरों का पराञ्च भाव। यज्ञोपवीत से विपरीत स्वरूप प्राचीनावीत का होता है। यहाँ भाव यह है कि मनुष्य को आगे अपनी प्रजा और सम्पत्ति के विस्तार के साथ अपने पीछे अपने पालकों का भी पालन करना चाहिए। प्रजा पूर्व तथा पितर पश्चिम रूप है। पुत्र के पालन में अनेक सावधानियाँ रखनी पड़ती हैं। इसलिए उनके पालने में अन्नादि को अच्छी से देखभाल करके दिया जाता है। जैसे पौर्णमास में व्रीहि का तीन बार फलीकरण है। जबकि यहाँ पितरों को एक बार स्थूलरूप से अन्नादि को देखकर दे दिया जाता है। क्योंकि पितर लोग समझदार हैं। इसीलिए एक बार फलीकरण करता है। पितरों का पराञ्च भाव भी यही है कि वे सामान्य सहयोग पाकर परिवार से दूर हो जाते हैं या वे परिवार से पीछे हो जाते हैं।

तस्मिन्नधिश्रितऽआज्यं प्रत्यानयति[२९] - हवि का निर्वाप करने के लिए अब चरु को अग्नि पर पकाता है। पकते समय चरु में घी डालता है। यहाँ भाव यह है कि घी स्नेहन स्वरूप वाला होने से यहाँ पर स्नेहभाव का द्योतक है। पितरों की अपेक्षा

---

[२७] शत० ब्रा० २.४.२.८

[२८] शत० ब्रा० २.४.२.९

[२९] शत० ब्रा० २.४.२.१०

होती है चाहे उन्हें सामान्य ही दिया जाए किन्तु प्रेम-भाव से दिया जाना चाहिए। सन्तानों का प्रेम युक्त व्यवहार ही उनका भोजन है। देवों को भोजन देने के लिए अग्नि में आहुति और मनुष्यों के लिए थाली में परोसा जाता है। किन्तु यहाँ चरु में घी को डालना कर्म इस अन्न को पितरों के लिए कर देता है। इसीलिए पकते समय घी डाला जाता है।

स उद्वास्याग्नौ द्वेऽआहुति जुहोति[३०] - चरु को अग्नि से उतारकर दो आहुतियां अग्नि और सोम देवता के लिए दी जाती हैं। इन आहुतियों से यह दर्शाया गया है कि पितरों की सेवा में लगा हुआ मनुष्य कहीं अपने संकल्प को भूलकर सेवा में ही आसक्त न हो जाए। उसे स्मरण रखना चाहिए कि संकल्पाग्नि ही उसे हव्य-कव्य सब देने वाला है। उसी से सेवा की सामग्री प्राप्त होती है। अग्नि का सभी देवकर्मों में भाग होता ही है। तथा यहाँ सोम की आहुति का प्रयोजन यह है कि सोम पितरों का देवता है इसलिए पितृ-कर्म में देवों की आहुतियां दी जाती है। **अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा। सोमाय पितृमते स्वाहा।**[३१] आहुतियां मेक्षण नामक पात्र से दी जाती है। इसके उपरान्त दक्षिणाग्नि के दक्षिण भाग में दक्षिण से पूर्व की ओर एक रेखा खींची जाती है। इस यज्ञ का देवता कव्यवाहन अग्नि है। हव्य का अर्थ है जो बुलाकर दिया जाता है। देवों को घर बुलाकर उनके लिए हविष्/ हव्य दिया जाता है। पितरों को घर आने में कष्ट होता है। अतः सन्तान को उन्हीं के पास जाकर अन्न देना होता है, इसलिए यह अन्न कव्य कहलाता है। क्रान्तदर्शी होने से पितरों को भी कव्य कहते है। और उनका अन्न भी कव्य कहलाता है। यहाँ कव्यवाहन अग्नि में आहुति देने के त्याग-भाव से, कव्य पितरों को भी अन्न दिया जाता है। मनुष्य को अपनी कमाई से एक भाग पितरों के लिए निकाल देना चाहिए। वो भाग स्वयं के प्रयोजनार्थ न हो इस बात को कहने के लिए ही रेखा (मर्यादा) खीची जाती है।

परस्ताद् उल्मुकं निदधाति[३२]- रेखा के दक्षिण छोर पर दक्षिणाग्नि कुण्ड से

---

[३०] शत० ब्रा० २.४.२.११

[३१] शत० ब्रा० २.४.२.१३

[३२] शत० ब्रा० २.४.२.१४

जलती हुई लकड़ी को रखा जाता है। यदि इसे न रखे तो असुर तथा राक्षस पितरों के इस भाग को नष्ट कर दें। इस जलती लकड़ी से पितरों के भाग की रक्षा करता है। दुष्ट लोग पितरों के नाम से उनके भाग को हड़प लेते हैं। वृद्ध और ध्यानयोग में लगे पितरों को उनका भाग ठीक से मिल सके, इसकी व्यवस्था और प्राप्ति का निश्चय करना ही रेखा पर अग्नि स्थापना का प्रयोजन है। इस्लिए अग्नि स्थापन के समय **ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना**[३३] मन्त्र का पाठ करता है।

यहाँ तक की व्यवस्था उन पितरों के लिए है जो वन में वास कर रहे हैं। यदि कभी पितर लोग घर आ जाये तब उनके सत्कार के लिए निम्न कार्य किए जाने चाहिए-

हाथ पैरों का धुलवाना और आसन की व्यवस्था करना- जब पितर लोग घर आए हों तब यजमान **अथ उदपात्रमादाय अवनेजयति। असौ अवनेनिक्ष्व।**[३४] जल के पात्र को हाथ में लेकर पितरों के हाथ पैर धुलवाता है। 'असौ' पद के स्थान में पितर का नाम लेकर कहता है आप हाथ धो लीजिए। एक झटके में उखाड़े गए, मूलसहित कुशा से बना आसन पितरों के लिए बैठने के लिए बिछाया जाता है।[३५] क्योंकि पितर लोग भी स्वयं को एक झटके मे गृहस्थाश्रम से अलग कर लेते हैं।

पिण्ड का अर्थ- पिडि संघाते। इक्कठा देने का स्वरूप। पितरों को महीने भर का भोजन एक साथ दे दिया जाता है। इसी कारण इस यज्ञ का नामकरण **पिण्डपितृयज्ञ** हुआ।

दान की अभिव्यक्ति- जब पितरों को भोजन सामग्री दी जाती है तब यजमान **असौ एतत् ते इति।** पितरों का नाम लेकर कहता है यह आपका है। कुछ लोग देते समय कहते हैं- **एतत् ते ये च त्वामनु इति।** यह आपके और आपके अनुचरों के लिए है। सो ऐसा नहीं कहना चाहिए। क्योंकि अनुचरों का भी भाग होने से पितर लोग उसका उपयोग करते हुए घबराएंगें।

---

[३३] यजुर्वेद २.३२

[३४] शत० ब्रा० २.४.२.१६

[३५] अथ सकृदात् छिन्नानि उपमूलं दिनानि भवन्ति। शत० ब्रा० २.४.२.१६

जप करना- जब पितर लोग को अन्न दे दिया जाता है तब **अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्।**[३६] इस मन्त्र से जप करता है कि इस भोजन से आप जहां भी अपने आश्रम में हो आनन्द उठाईये।

अथ पराङ् पर्यावर्तते (पीठ घुमाना)- जब पितरों को उनका भाग दे दिया जाता है तब उनसे पीठ घुमाकर खड़ा हो जाता है। इसका भाव यह है कि पितर लोग गृहस्थ मनुष्यों से अलग है। पितरों को देने के बाद भी उनके भाग पर यजमान की दृष्टि न जाए। इसलिए पीठ घुमाकर खड़ा हो जाता है।

उपपल्यय्य जपति- अब पीठ घुमाने के बाद पुनः मुड़कर पितरों को देखता है और **अमीमदन्त पितरो यथाभागमवृषायिषत।**[३७] इस मन्त्र भाग का जप करता हुआ कहता है कि तृप्त होकर हर्षित हुए पितर लोग, अपना-अपना भाग खा चुके हैं या ग्रहण कर चुके हैं।

अवनेजयति/अवनेनिक्ष्व- भोजन करने के पश्चात् अब यजमान हाथ में जलपात्र लेकर पितरों के हाथ और मुख को धुलवाता है। यह वही व्यवहार है जो भोजन करने वाले के प्रति किया जाता है।

नमस्कार- यजमान धोती की निवि (जहां रुपये रखे जाते है) को खोलकर ६ बार नमस्कार करता है। ६ ऋतुएं है। ऋतु पितर है। पितर घर के स्वामी है। इसलिए घर की कामना से पितरों को नमस्कार करता है। इसके उपरान्त पिण्ड को पात्र में रखकर सूंघता है। इसका भाव यह है कि वह पितरों के जीवन में बहने वाली सुगन्ध को धारण करना चाहता है जो पितरों की सम्पत्ति है। यद्यपि वह यजमान के द्वारा दिया गया भाग ही है। पुनः भी पितरों ने उसे स्वीकार किया तथा उनके प्रति यजमान की श्रद्धा बनी रहे। इसी कारण से पिण्ड को सूंघता है। अब जिस कुशा-आसन पर पितर बैठे उन कुशाओं को अग्नि में अरसनार्थ डाल दिया जाता है। यह क्रिया समाप्ति या प्रतिपत्ति कर्म ही जानना चाहिए।

अब कात्यायन श्रौतसूत्र के अध्याय ४, कण्डिका १ के २३ -२७ सूत्रों के सम्बन्ध में विचार किया गया है कि पिण्ड-पितृयज्ञ कौन करे, कौन न करे? पुनः निर्णय लिया गया है कि जिसका पिता जीवित हो वह न करे। शतपथ ब्राह्मण में तो

---

[३६] यजुर्वेद २.३१

[३७] यजुर्वेद २.३१

इस प्रकार की कोई बात नहीं लिखी है। मृतक श्राद्ध के साथ यह पिण्ड दान का सम्बंध किस प्रकार हो गया ? यह विचार बड़ा मनोरञ्जक है। इसी प्रकार कुछ लोग गीता के अध्याय २ के ४२ के श्लोक के वाक्य **पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रिया** का अर्थ इस प्रकार से करते हैं कि जब युद्ध मे लोग मर जाते हैं तो मरे हुओं को पिण्ड देने वाला कोई नहीं होता। परन्तु पता नहीं लगता कि इसमें 'मरे हुए' का नाम किस प्रकार आ गया। इसका संबन्ध तो जीवित पितरों से अति स्पष्ट है। युद्ध मे प्रायः युवा लोग मारे जाते है पुनः उनके पितरों को राज व्यवस्था का आश्रय लेना पड़ता है। इस प्रसंग में तो जीवित पितरों की भोजनादि सामग्री की बाधा ही दिखाई देती है। यहाँ मरे हुए की बात ही नहीं है।

इसी प्रकार निरुक्त में भी पाठ है- **अभ्रातृका इव योषास्तिष्ठन्ति पिण्डदानाय। सन्तानकर्मणे हतवत्मार्गस्तिष्ठन्ति॥** इसका अर्थ वे इस प्रकार करते हैं कि जिस स्त्री का भाई नहीं होता, वह पिण्डदान रूप सन्तान कर्म में हत-मार्ग होकर रह जाती है। उसे कोई राह नहीं सूझती। इसका अर्थ स्पष्ट है कि जिस कन्या का भाई नहीं होता, उसके पति कुल में चले जाने के बाद चिन्ता बनी रहती है कि मेरे बूढ़े माता-पिता को अन्न कौन खिलाएगा? यह प्रसंग भी मृतक की अपेक्षा जीवित पितरों के लिए ही अधिक संगत होता है। इसलिए समीपस्थ संबंधी को सपिण्ड कहते है। कात्यायन ने लिख दिया जिसका पिता जीवित हो वह पिण्ड-पितृयज्ञ न करे तो यह स्वाभाविक है। इसका अर्थ यह है कि जिसका पिता जीवित हो वह अपने विपदा से ग्रस्त सम्बन्धियों की सेवा अपने हाथ से न करके अपने पिता के हाथ से करवाए। जिससे यह गौरव उसके पिता को मिले। इसमें मरे हुए का कुछ सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार पं० बुद्धदेव जी ने पिण्डपितृयज्ञ के यथार्थस्वरूप को प्रकट किया है।

शतपथ-ब्राह्मण में वर्णित दैवी सृष्टि

सचिन[1]

भारतीय जन जीवन में वेदों का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण है। वेदों की सुदृढ़ आधारशिला पर ही भारतीय धर्म, संस्कृति और सभ्यता का भव्य प्रसाद प्रतिष्ठित है। अपने प्रातिभ नेत्रों से साक्षात्कृतधर्मा[2] महर्षियों ने जिन नित्य सत्यों का साक्षात्कार किया और जो आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा ईश्वर के अनुग्रह से उनके पवित्र अन्तःकरणों से प्रवाहित हुई, उसी विभव ज्ञान धारा का नाम वेद है।

वेद शब्द की व्युत्पत्ति विद्ज्ञाने धातु से हुई है। इनमें ज्ञान-विज्ञान के साथ-साथ आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक समस्त पक्षों का प्रतिपादन है। वेद धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार प्रकार के पुरुषार्थों के प्रतिपादक भी हैं, जिनकी पुष्टि आचार्य विष्णुमित्र ने वेद शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए की है –

"विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिर्धर्मादिपुरुषार्था इति वेदाः"

अर्थात् जिसके द्वारा धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष -पुरुषार्थों का बोध हो उसे वेद कहते हैं। सायणाचार्य के अनुसार-

"इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः"

अर्थात् अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति तथा अनिष्ट के परित्याग के लिए अलौकिक उपाय जो ग्रन्थ बताता है, वह वेद है।

ज्ञान के अक्षयकोश रूप वेदों के परम रहस्य को जानने के लिए न जाने कितने मुनियों एवं ऋषियों ने कितनी गहन साधना की है। वेदों के गूढ़ अर्थों को जानने के लिए प्रातः स्मरणीय ऋषियों ने इन ब्राह्मणग्रन्थों की रचना की। वेदों के व्याख्यान भूत

---

[1] **शोधच्छात्र, संस्कृत-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

[2] साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः। निरुक्त

इन महान् ग्रन्थों को हमारे राष्ट्र की एक चिन्तन धारा ने साक्षात् वेद कहकर गौरवान्वित किया है। ''**मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्**'' का यही अभिप्राय है।[३]

ब्राह्मणग्रन्थ वैदिक जीवन के सांस्कृतिक अध्ययन के स्रोत हैं। ब्राह्मणग्रन्थ एक विशिष्ट साहित्यिक अभिव्यंजना मात्र नहीं है अपितु उनका महत्त्व मूलतः ऐतिहासिक है। ये भारतीय जीवन के विकास के क्रम में एक सम्पूर्ण परम्परा के दिग्दर्शक व निर्देशक ग्रन्थ हैं। ब्राह्मणग्रन्थों का प्रधान विषय यज्ञों का प्रतिपादन और उनकी विधियों की व्याख्या करना है - **यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।**[४] इनमें सूक्तों के विनियोग, कर्मकाण्ड, स्तुतियों एवं उपासना के साथ-साथ ब्रह्म पर भी विचार किया गया है। ब्राह्मण साहित्य को तीन भागों में विभाजित किया गया है - ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। इनमें कर्मकाण्ड को ब्राह्मण, उपासना काण्ड को आरण्यक तथा ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। इन मन्त्रों व ब्राह्मणग्रन्थों से ही वैदिक वाङ्मय पूर्ण होता है।

यजुर्वेद संहिता की दो शाखाएँ हैं - कृष्ण यजुर्वेद और शुक्ल यजुर्वेद। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बन्धित ब्राह्मणग्रन्थ का नाम ''तैत्तिरीय ब्राह्मण'' है। शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन और काण्व दोनों शाखाओं के ब्राह्मणग्रन्थ का नाम '"शतपथ' है। यह ब्राह्मणग्रन्थ पूर्ण और प्रामाणिक रूप से उपलब्ध है।

ब्राह्मणग्रन्थों में 'शतपथ ब्राह्मण' विशिष्ट, सर्वोपरि, विपुलकाय और यज्ञानुष्ठान का सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादक है। यह ब्राह्मण यजुर्वेद की दोनों शाखाओं माध्यन्दिन और काण्व में प्राप्त होता है। शतपथ ब्राह्मण का दूसरा नाम 'वाजसनेय ब्राह्मण' भी है। शतपथ ब्राह्मण को 'शत पन्थानः' कहा गया है अर्थात् सौ रास्तों वाला। उपलब्ध सभी ब्राह्मणों में शतपथ ब्राह्मण सबसे बड़ा है। इसकी विषय वस्तु अत्यधिक विस्तृत है। इसके प्रारम्भिक काण्डों में हविर्यज्ञ दर्शपौर्णमास इष्टियों के प्रमुख एवं अवान्तर अनुष्ठानों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। इसमें यज्ञों की विधियाँ, मंत्रों के विनियोग, आध्यात्मिक चिन्तन, ईश्वर की उपासना, सृष्टि की उत्पत्ति तथा मोक्ष का विवेचन किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में आख्यानों की बहुलता है।

---

[३] आप० श्रौ० २४/१/३१

[४] शत० ब्रा० १/७/१/५

इनमें इन्द्र वृत्र-युद्ध, योषित्कामी गन्धर्व, सुपर्णी तथा कद्रू, च्यवन भार्गव तथा शर्यात मानव, स्वर्भानु असुर तथा सूर्य, वेन्य, असुर नमुचि एवं इन्द्र, पुरूरवा-उर्वशी, केशिन्-राजन्य, मनु एवं श्रद्धा तथा जल प्लावन आदि के आख्यान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार यज्ञ ही विश्व सृष्टि का मूल हेतु है। यज्ञ में ही प्रजाएँ उत्पन्न हुईं, जिनसे सृष्टि का क्रमिक विकास होता रहा –

यज्ञाद्वै प्रजाः यज्ञात्प्रजायमाना मिथुना प्रजायन्ते......... अन्ततो यज्ञस्येमाः प्रजा प्रजायन्त।[५]

सृष्टि कर्ता प्रजापति यज्ञ है। शनैः-शनैः प्रजापति के श्रम एवं तप से सृष्टि प्रक्रिया आगे बढ़ी –

प्रजापतिर्हवा इदमग्र एक एवास।

स ऐक्षत कथं नु प्रजायेय इति सोऽश्राम्यत,

स तपो ऽतप्यत।[६]

भुवनों में सर्वप्रथम पृथ्वी की रचना हुई - **इयं वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा।**[७] इसके पश्चात् हिलती हुई पृथिवी का दृढीकरण, शर्करासम्भरण, फेन सृजन, मृत्तिका सृजन, पशु सृष्टि, औषधियों एवं वनस्पतियों की सृष्टि, अन्य लोकों की सृष्टि, संवत्सरादि की सृष्टि, विभिन्न वेदों और छन्दों के आविर्भाव का शतपथ ब्राह्मण में वर्णन है।

त्रयीविद्या ऊँकार तथा भूर्भुवः सृजन -

सृष्टि प्रक्रिया के अन्तर्गत सर्वप्रथम त्रयी विद्या के स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है। शतपथ-ब्राह्मण में ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि तीन ही विद्याएँ हैं - ऋक्, यजुः एवं साम।

त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंषि सामानि।[८]

---

[५] शत० ब्रा० १/९/१/५

[६] वही, २/२/२/१

[७] वही, १४/१/२/१०

[८] शत० ब्रा० ४/६/७/१

शतपतथ-ब्राह्मण के ही एक अन्य स्थान पर कथित है कि यह त्रयी विद्या उन्हें श्वास-प्रश्वास के समान अनायास ही परमेश्वर से प्राप्त हुई है।

एवं वा अरे महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः।[९]

ब्राह्मणग्रन्थों के अनुसार यह त्रयीविद्या प्रजापति के मुख से उत्पन्न हुई है। ब्राह्मणग्रन्थों के अनुसार प्रजापति ने ही तीन लोकों का निर्माण किया था तथा इन्हीं तीनों लोकों से अग्नि, वायु एवं आदित्य का प्रादुर्भाव भी स्वीकार किया जाता है। प्रजापति की मानसिक भावना से ही सर्वप्रथम ऋक्, यजुष् तथा सामवेदों की उत्पत्ति हुई। यही त्रयी विद्या कहलायी। इसलिये इसकी उत्पत्ति सर्वप्रथम मानी जाती है; क्योंकि बहुप्रजाओं की कामना से युक्त प्रजापति ने अपने श्रम एवं तप के फलस्वरूप त्रयीविद्या (यज्ञ) को उत्पन्न किया।[१०] यह यज्ञ त्रयीविद्या का ही स्वरूप है। देवता ऋक्, साम तथा यजुष् द्वारा ही यज्ञ की क्रियाओं को पूर्ण करते हैं।[११] यज्ञ भी त्रयी विद्या का अनुपूरक है। काण्वशाखीय शतपथ-ब्राह्मण के अनुसार यह यज्ञ उतना ही अधिक महत्त्वपूर्ण होता है, जितना कि त्रयीविद्या। त्रयीविद्या के ज्ञान से ही यज्ञ सम्पादित किये जाते हैं।[१२] यज्ञ के अन्त में ऋक्, यजुः तथा साम के अर्थज्ञान से ही यजमान को लक्ष्य की प्राप्ति होती हैं।

शतपथ-ब्राह्मण में कथित है कि देवता सत्य का अनुसरण करते हैं तथा यह सत्य त्रयीविद्या के माध्यम से ही जाना जाता है। अतः देवता कहते हैं कि आओ! हम सब एक साथ यज्ञों का सम्पादन करें तथा साथ ही साथ सत्य का विस्तार भी।

तद् यत्तत्सत्यम् त्रयी साऽविद्या ते देवा अब्रुवन् यज्ञं कृत्वेदं सत्यं तनवामहा इति।[१३]

सर्वप्रथम ओंकार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शतपथ-ब्राह्मण में वर्णित है कि पृथिवी की विशाल सृष्टि के अनन्तर जो भाग क्षरित हुआ, वही अक्षर होकर अष्टाक्षरा

---

[९] वही, १४/५/४/१०

[१०] सैषा त्रयी विद्या यज्ञः। शत० ब्रा० १/१/४/३

[११] ऋक्सामभ्यां वै यजुर्भिर्यज्ञस्योदृचम् गच्छन्ति। वही, ३/१/१/१२

[१२] एतावान्वै सर्वो यज्ञो यावानेष त्रयो वेदास्तस्यैतद्रूपं क्रियतऽएष योनिराशयस्तदेतेन त्रयेण वेदेन पुनर्यज्ञमारभते। वही, ५/५/५/१०

[१३] शत० ब्रा० ९/५/१/१८

गायत्री नामक छन्द बन गया।[१४] यह ऊँकार तथा तीन व्याहृतियाँ ब्रह्मा की प्राप्ति का मुख्य साधन हैं। मनु तो यहाँ तक कह देते है कि जो मनुष्य प्रतिदिन आलस्य रहित होकर निरन्तर तीन वर्षों तक ऊँकार सहित महाव्याहृतियों की उपासना करता है, वह साक्षात् ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। यह अक्षर निश्चय ही विनाश रहित है, जैसा कि नाम से स्पष्ट है। यह शब्द सूक्ष्म वायु द्वारा कहा जाता है, जो निष्पीड़ित होकर बाहर आता है। इसी के तत्त्व वे तीनों लोक है। इन तीनों लोकों के तत्त्वस्वरूप देवता हैं तथा इन देवताओं के तत्त्व वेदत्रयी हैं। तीन व्याहृतियाँ (भूर्भुवः स्वः) तो तीन वेदों के सारभूत हैं। इस अक्षर के द्वारा ही विश्वसृजन का कार्य भी सम्पादित होता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार 'भूः' पुरुष प्रजापति का सिर है, 'भुवः' दोनों भुजाएँ तथा 'स्वः' उस पुरुष प्रजापति की प्रतिष्ठा है।[१५] इस प्रकार अक्षर एवं भूर्भुवः का त्रयी विद्या के सन्दर्भ में विचार किया गया, जो देव सृष्टि का मूलाधार है।

वायु का सृजन - अन्तरिक्ष में सर्वप्रथम भूत वायु विद्यमान था। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार 'ऊँकार' के द्वितीय स्वरमात्रा से वायु की उत्पत्ति मानी गयी है।[१६] वैसे तो वायु अदृश्य पदार्थ है, किन्तु जैमिनीय ब्राह्मण में कहा गया है कि यह वायु अन्तरिक्ष में दीप्त होता है।[१७] यही बात माध्यन्दिन यजुर्वेद संहिता में भी कही गयी है कि वायु तीव्र तेजवाली है। इस तथ्य के पुष्टिकरण में शतपथ-ब्राह्मण के एक स्थल का उल्लेख किया जा सकता है, जहाँ प्राण से अग्नि तथा अग्नि से वायु के दीप्त होने की बात कही गयी है।[१८] यह वायु एक ऐसा सूत्र है, जिसके माध्यम से आदित्य समस्त लोकों को नियंत्रित किये हुए है।[१९]

---

[१४] तद् यदसृज्यताक्षरत् तद्यदक्षरत्तस्मादक्षरम्।
कृत्वोऽक्षरत्सैवाष्टाक्षरा गायत्र्यभवत्। शत० ब्रा० ६/१/३/६

[१५] तस्य भूरिति शिरः भुवरिति बाहू द्वे एतेऽक्षरे स्वरिति प्रतिष्ठा। शत० ब्रा० १४/६/९/५

[१६] तस्य द्वितीयया स्वरमात्रयाऽन्तरिक्षं वायुं यजुर्वेदं भुव इति व्याहृतिस्त्रैष्टुभं छन्द। गो० ब्रा० पू० १/१८

[१७] वायुर अन्तरिक्षे दीप्यते। जै० ब्रा० १/१९२

[१८] प्राणेन वाऽग्निर्दीप्यते अग्निना वायुः। वायुना आदित्यः,आदित्येन चन्द्रमाः। शत० ब्रा० १०/६/२/११

[१९] तदसावादित्य इमान् लोकान् सूत्रे समावयते तद् यत् तत् सूत्र वायुः सः। शत० ब्रा० ८/७/३/१०

नदी सुमुद्रादि सृजन - विश्व सृष्टि प्रक्रिया में वर्षा की सृष्टि का महत्त्वपूर्ण स्थान है; क्योंकि वर्षा ही पृथिवी पर जीवन का मूलाधार है। शतपथ ब्राह्मण में वर्णित कथ्य के अनुसार प्रजापति ने वाणी के सहयोग से जल का सृजन किया था।[२०] इसी ब्राह्मण के एक अन्य स्थल पर कथित है कि अग्नि से धुआं उत्पन्न हुआ, धुएँ से मेघ तथा मेघ से वृष्टि की उत्पत्ति हुई।

अग्निर्वै धूमो जायते। धूमाद् अभ्रम्, अभ्राद् वृष्टिः।[२१]

निरुक्त में भी इसका वर्णन प्राप्त होता है। यथा –

अग्निर्वा इतो वृष्टि समीरयति धामच्छदर्दिवि (खलु वै) भूत्वा वर्षति मरुतः सृष्टां वृष्टि नयन्ति।[२२]

अर्थात् पृथिवीगत जल ही द्युलोक में जाकर वृष्टि का कारण बनता है। वृष्टि केवल भू-पिण्ड पर ही नहीं होती है, किन्तु द्युलोक पर भी होती है। दोनों वृष्टि में अन्तर मात्र इतना ही रहता है कि द्युलोक में पृथिवीगत अंगिरा (अग्नि) वृष्टि के प्रवर्तक हैं तथा भूलोक में अन्तरिक्षीय पर्जन्य वृष्टि के प्रवर्तक हैं। अर्थात् पृथिवी लोक से अन्तरिक्ष में गया हुआ जल पर्जन्य द्वारा बरसता है तथा द्युलोक से पृथिवी पर जल अग्नि द्वारा बरसता है। इस पृथिवी पर वृष्टि की सृष्टि होने के साथ ही साथ नदियों का भी पृथ्वी पर वर्षा के सृजन की व्यवस्था अन्नादि के उत्पादन के लिए ही हुई थी, क्योंकि अन्न ही समस्त जीवों की सृष्टि का मूल आधार है।

द्युस्थानीय देवता - वैदिक दृष्टिकोण से स्थान भेद के आधार पर देवताओं को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम द्युस्थानीय, द्वितीय अन्तरिक्ष-स्थानीय तथा तृतीय पृथिवी-स्थानीय। सर्वप्रथम द्युस्थानीय प्रमुख देवताओं की सृष्टि का वर्णन किया जाएगा, जो प्रायः दीप्तियुक्त होते हैं।

सूर्य, सविता अथवा आदित्य - ये तीनों संज्ञाए प्रायः एक ही पिण्डस्वरूप सूर्य मण्डल के लिये प्रयुक्त होती हैं। आदित्य ही सूर्य के रूप में विख्यात है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार वह आदित्य निश्चित रूप से आपः का अधिष्ठान है, जहाँ वह

---

[२०] सोऽपोऽसृजत वाच एव लोकाद् वागेवास्य सा सृज्यत। शत० ब्रा० ६/१/१/९

[२१] वही, ५/३/५/१७

[२२] नि० ७/२४

तपता है।[२३] शतपथ-ब्राह्मण में तो यहाँ तक कह दिया है कि आपः ही सूर्य है।[२४]

चन्द्रमा सृजन - देव सृष्टि प्रक्रिया में सूर्य (आदित्य) के पश्चात् द्युस्थान में चन्द्रमा एक प्रकाश युक्त देवता के रूप में विद्यमान रहता है। बहुप्रजा होने की कामना रखने वाले प्रजापति ने जब श्रम एवं तपश्चर्या की प्रक्रिया को अपनाया तभी चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई।[२५] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार उस बहुप्रजाकामी प्रजापति ने आदित्य तथा 'द्यु' को मिथुनी भाव से युक्त किया। इस प्रक्रिया में उस अण्ड में होने वाला वस्तु उत्पन्न हुआ। क्योंकि वह अण्डा प्रजापति के समीप था, इसलिए उसने उसका स्पर्श किया तथा उसको 'रेतस्' धारण करने के लिए कहा।

चन्द्रमा का सम्बन्ध सोम के साथ भी किया गया है।[२६] ब्राह्मणग्रन्थों में यहाँ तक कि सोम से ही चन्द्रमा की उत्पत्ति मानी गयी है,[२७] क्योंकि यह सोम द्युस्थानीय है। शतपथ-ब्राह्मण के अनुसार जब चन्द्रमा क्षीणकाय हो जाता है, तब वह पुनः मित्रावरूण के वीर्यसिञ्चन से उत्पन्न होता है।

तद्वाऽएताँरात्रि। मित्रावरुणे रेतः सिञ्चति तदेतेन रेतसा प्रजायते यदापूर्यते तद्यदेषात्र मैत्रावरूणी..................।[२८]

शतपथ-ब्राह्मण में वर्णित एक कथा के अनुसार चन्द्रमा अमावस्या की रात को न तो पूर्व दिशा में दिखाई देता है और न पश्चिम में ही दिखाई पडता है। वह तो द्युलोक से पार्थिव लोक में आकर औषधि और जलों में प्रविष्ट हो जाता है। इस प्रकार याज्ञिक, लोकगत औषधियों एवं जलों को इकट्ठा कर उसे आहुतियों से पुनः उत्पन्न करते हैं, तभी वह प्रतिपदा को पश्चिम में दीखता है। चन्द्रमा में जो काला धब्बा होता है, उसके सम्बन्ध में शतपथ-ब्राह्मण में वर्णित है कि जब देवता असुरों से संग्राम

---

[२३] एतद्ह अपाँ गभिष्ठं यत्रैष एतत् तपति। शत० ब्रा० ७/५/१/८

[२४] आपो वाऽअर्कः। शत० ब्रा० १०/८/५/२

[२५] प्रजापतिः प्रजातिकामस्तपोऽतप्यत तस्मात्तप्तात्यथप... चाजायन्ताग्निर्वायुरादित्यः चन्द्रमा उषाः। कौ० ब्रा० ६/१

[२६] चन्द्रमा सौम्यः। शत० ब्रा० १/६/३/२४

[२७] यत्सौम्यं न्यक्तमास तं चन्द्रमसं चकार। वही, १/६/३/१७

[२८] शत० ब्रा० २/२/४/१९

करने की तैयारी कर रहे थे, तब वे आपस में बोले कि 'आओ हम इस पृथिवी का जो कुछ भी भाग यज्ञ के योग्य हो; उसे चन्द्रलोक में स्थित कर दें, क्योंकि यदि कही असुरगण विजयी हो गये तब हम लोग यज्ञ-यागादि कर्म नहीं कर पायेंगे। अतः अर्चना और श्रम द्वारा वैभव प्राप्त करने की इच्छा से वे पृथिवी के पवित्र यज्ञ-योग्य भाग को चन्द्रलोक में स्थापित कर दिये। पृथिवी का यही भाग चन्द्रमा पर काले धब्बे के रूप में दिखाई देता है।[२१]

विष्णु –द्युस्थानीय सूर्य तथा चन्द्रमा के बाद यज्ञों के प्रतिष्ठित देवता विष्णु का नाम आता है। ब्राह्मणग्रन्थों में विष्णु का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। जब गर्भ में प्रजापति ने अपना रूप विस्तार किया, तब प्रजापति ने ही दो यजुषों द्वारा विष्णु की सृष्टि की। शतपथ-ब्राह्मण में विष्णु को क्रमशः पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा आकाश में तीन पाद-प्रक्षेप करने वाला कहा गया है। इसीलिए याज्ञिक को भी उसी के पदों पर चलने का निर्देश दिया जाता है। शतपथ-ब्राह्मण में भी ऐसे ही मिथक का वर्णन है, जो कुछ विस्तार से है। इसके अनुसार जब असुर देवों पर विजय श्री प्राप्त कर लिये, तब वामन रूपधारी विष्णु ने यज्ञ करने लिए पृथिवी के कुछ भाग को असुरों से माँगा। असुरगण उन्हें मात्र उतना ही स्थल देने को सहमत हुए, जितने पर वह वामनपुरुष लेट सकता था। फलस्वरूप, उस मायावी विष्णु ने सम्पूर्ण पृथिवी को अपने अधिकार में कर लिया। शतपथ-ब्राह्मण के एक अन्य स्थल पर यह कहा गया है कि विष्णु ने सर्वप्रथम यज्ञ को पूर्ण किया था, इसीलिए वह देवताओं में सर्वश्रेष्ठ हो गया। इस प्रकार जो विष्णु है, वह यज्ञ है तथा जो यज्ञ है, वह आदित्य है। विष्णु की सर्वोच्चता को ऐतरेय-ब्राह्मण में भी स्वीकार किया गया है। यहाँ तक कि अग्नि को निम्नस्तरीय तथा विष्णु को उच्चस्तरीय मानकर समस्त देवगणों को इसी के मध्य में रखा गया है। विष्णु के अवतार का वर्णन शतपथ-ब्राह्मण में उपलब्ध होता है। मनु - मत्स्य प्रकरण में मत्स्य विष्णु का ही अवतार स्वरूप है।

इन्द्र की उत्पत्ति – अन्तरिक्ष स्थानीय देवताओं में इन्द्र प्रमुख देवता है। वैदिक असुरों से लोहा लेने वाला यदि कोई था तो वह इन्द्र है। देवगणों का प्रमुख

---

[२१] देवा ह वै संग्रामं सन्निधास्यन्तस्ते होचुर्हन्त यदस्यै पृथिव्या .... तदेतत् चन्द्रमसि कृष्णम्। शत० ब्रा० १/२/५/१८

सेनापति भी इन्द्र ही है। शतपथ-ब्राह्मण के अनुसार ब्रह्मत्व सदस् में 'साम' नर होता है तथा 'ऋक्' नारी होती है। ये दोनों (साम तथा ऋक्) जब स्त्री-पुरुष भाव से मैथुन करते हैं, तब परिणाम-स्वरूप इन्द्र की उत्पत्ति होती है। इस ऋक् तथा साम के तेज से इन्द्र उत्पन्न होकर सूर्य के समान ही तपता है।[३०] एक अन्य स्थान पर वर्णित है कि एक समय यज्ञ ने वाणी के साथ प्रसंग करने का विचार किया तथा उसके साथ प्रसंग भी किया। तब इन्द्र ने सोचा कि इस यज्ञ और वाणी के प्रसंग से एक भीषण राक्षस उत्पन्न होगा, जो मुझे पराजित कर देगा। अतः इन्द्र को एक उपाय सूझा कि मैं इस गर्भ में स्वयं गर्भ बनकर प्रवेश कर जाँऊ, जिससे उस राक्षस को उत्पन्न होने से रोक सकूँगा। इस प्रकार पूर्ण गर्भ कालोपरान्त वह इन्द्र ही पुनः उत्पन्न हुआ।[३१]

अग्नि-सृजन - पृथिवी स्थानीय देवताओं में अग्नि सर्वोच्च है। पृथिवी पर अग्नि की प्रमुखता है। अग्नि ही वह पार्थिव देव है, जिसकी देवों के सांसारिक कव्य के केन्द्र यज्ञाग्नि के मूर्तिकरणरूप में स्वभावतः सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। वैदिक देवों में इन्द्र के बाद इसी का प्रमुख स्थान है। ऐतरेय-ब्राह्मण में कथित है कि मनुष्यों द्वारा प्रज्वलित होने के कारण अग्नि पार्थिव है, किन्तु अग्नि को स्वर्गस्थानीय भी कहा गया है, क्योंकि वहाँ देवताओं द्वारा इसका प्रज्वलित होना स्वीकार किया गया है। ब्राह्मणग्रन्थों में अग्नि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक स्थल उपलब्ध होते हैं। सृष्टि के आदि में स्थित एकमात्र प्रजापति के बहुत होने की कामना के अनन्तर ही अग्नि की उत्पत्ति स्वीकार की गयी है।[३२] शतपथ-ब्राह्मण के अनुसार हिरण्यगर्भ के भीतर स्थित प्रजापति ने सर्वप्रथम जिस वस्तु को उत्पन्न किया, वही अग्नि कहलाया।[३३] सम्भवतः इसी कारण अग्नि को प्राजापत्य भी कहते है। अग्नि का एक नाम जातवेदस्

---

[३०] तद्वाऽएतद् वृषा साम योषामृचँसदस्यध्येति तस्मान्मिथुनादिन्द्रो.... साम्श्चचेन्द्र इन्द्र इति ह्यतेमा चक्षते य एष तपति। शत० ब्रा० ४/६/७/११

[३१] सोऽयं यज्ञो वाचममिद्ध्रयौ मिथुन्येनयास्यामिति ताँ संबभूव। इन्द्रो ह वा ईक्षांचक्रे ......तन्नाभिभवेदिति स इन्द्र एव गर्भो भूत्वैतन्मिथुनं प्रविवेश। वही, ३/२/१/२५-२६

[३२] प्रजापतेरधि देवताऽअसृज्यन्ताग्निः। शत० ब्रा० ११/१/६/१४

[३३] अथ यो गर्भोऽन्तरासीत् सोऽग्निरसृज्यत स यदस्य सर्वस्याग्रम् असृज्यत् तस्यादग्निरग्रिर्ह वै तमग्निरित्याचक्षते। शत० ब्रा० ६/१/१/११

भी है। शतपथ-ब्राह्मण में इस 'जातवेदस्' (अग्नि) की उत्पत्ति प्राण से बतायी गयी है।[३४]

कुमारोत्पत्ति - अग्नि को कुमार की संज्ञा भी दी गई है। शतपथ-ब्राह्मण में उपलब्ध एक कथा अनुसार सृष्ट्यादि में स्थित एकमात्र प्रजापति ने अपनी प्रजाकामिता से युक्त होकर श्रम एवं तप द्वारा आपः (महान् जल) को उत्पन्न किया। उस उत्पन्न हुए आपः ने कहा कि हम कहाँ स्थिर होगें ? उसके इस सन्देह के निवारणार्थ प्रजापति ने फेन की उत्पत्ति की पुनः फेन ने भी इसी तरह की कामना व्यक्त की, जिसके निवारणार्थ मृद (मिट्टी), सिकता (बालू), शर्करा (चूर्ण) तथा अश्म (लौह) के रूप में अविनाशी तत्त्वों की उत्पत्ति हुई और इसी क्रम में आपः के प्रतिष्ठास्वरूप पृथिवी का निर्माण भी हुआ, जो भूतों की अधिष्ठात्री बनी। इस प्रकार शतपथ-ब्राह्मण में कथित है कि ऋतुओं का आस्पद् 'संवत्सर' समस्त भूतों का पति एवं 'उषा' गृहपति (पत्नी) बनी। इसी स्त्री-पुरुष के रेतस् संयोग के फलस्वरूप कुमार की उत्पत्ति हुई। उत्पन्न हुए कुमार ने रूदन करना आरम्भ कर दिया। प्रजापति ने उसके रूदन का कारण पूछा, जिसके उत्तर में कुमार ने कहा कि मैं अनुपहतपाप वाला हूँ। मुझे अहितनाम की संज्ञा मत दो। इसके अनन्तर प्रजापति ने उसको 'रूद्र' इस संज्ञा से अभिहित किया। वह कुमार रुद्र नाम से भी सन्तुष्ट नहीं हुआ और परिणाम-स्वरूप प्रजापति ने उसके लिए शर्व, पशुपति, उग्र, शनि, भव, महादेव तथा ईशान आदि संज्ञाओं का विधान किया; जिसकी संयुक्ति आठ होती है। ये नाम अग्नि के ही है, जिनका विवरण ब्राह्मणग्रन्थों में वर्णित है।[३५] कुमार ने नवाँ स्थान ग्रहण किया। इस प्रकार वह कुमार भी अग्नि की ही प्रतिमूर्ति है। अग्नि के जिन आठ रूपों का यहाँ वर्णन हुआ है, वही अष्टाक्षरा गायत्री छन्द है, क्योंकि गायत्री को अग्नि भी कहा गया है और वही गायत्र्यग्नि कुमार के रूप में प्रविष्ट हो गयी।

असुर- जो देवताओं द्वारा पराजित तथा विनष्ट हुए हैं, क्योंकि देव तथा असुर जन्मजात शत्रु हैं। इस कारण इन दोनों में विरोध होना स्वाभाविक है। ब्राह्मणग्रन्थों में इनके विद्वेष का वर्णन प्राप्त होता है जहाँ कथित है कि एक बार देवों तथा असुरों में

---

[३४] प्राणाद् वाऽएष प्रथमजायतास्म द्वितीयंपरि जातवेदा इति। वही, ६/७/४/३

[३५] तान्येतान्याष्टावग्निरूपाणि। शत० ब्रा० ६/१/३/१८

प्रतिस्पर्धा होने लगी। असुर आसुरीगुण से सम्पन्न थे, अतः अभिमानवश वे यज्ञ की आहुति को अग्नि में न देकर स्वयं अपने मुख में देने लगे, इसी अभिमान के फलस्वरूप वे पराजित हो गये।[३६] शतपथ-ब्राह्मण के अनुसार देवों को यह आशङ्का होने लगी कि वाणी कहीं असुरों के पास न चली जाए। इसलिए वाणी को अपने एकाधिकार में करने के लिए अनुष्टुप् छन्दों से आहुति दी। क्योंकि अनुष्टुप् वाणी का छन्द है, इसलिए जब वाणी ने देवों को स्वीकार कर लिया, तब असुरगण कुछ नहीं कर सके, तथा **'हेऽलयो हेऽलयः'** कहकर पराजित होने लगे।[३७] शतपथ-ब्राह्मण में पितृमेध यज्ञ के प्रकरण में वर्णित है कि प्रजापति के दोनों पुत्र (देव तथा असुर) आपस में झगड़ने लगे। देवों ने अपने जन्मजात विरोधी असुरों को इस भूलोक से निकाल दिया।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दैवीय सृष्टि त्रयीविद्या, ओंकार एवं भूर्भुवः स्वः के सहयोग से ही सृष्ट होती है। ऋक्, यजु और सामवेद को त्रयीविद्या का स्वरूप माना गया है। यह त्रयीविद्या प्रजापति के मुख से उत्पन्न हुई है। प्राचीन महर्षियों ने इसे श्वास-प्रश्वास के समान परमेश्वर से अनायास ही ग्रहण किया है। सृष्टि के आदि में स्थित एकमात्र प्रजापति के बहुप्रजा होने की कामना के अनन्तर तप एवं श्रम किया। जिसके फलस्वरूप तीनों लोकों की उत्पत्ति हुई। प्रजापति ने उन तीनों लोकों को तपाया, जिससे तीन ज्योतियाँ (अग्नि, सूर्य एवं वायु) उत्पन्न हुई। उसने पुनः इन तीन ज्योतियों को भी तपाया जिसके परिणाम स्वरूप त्रयीविद्या उत्पन्न हुई। इसी क्रम में उसने त्रयीविद्या को भी तपाया जिससे तीनों व्याहृतियाँ 'भूर्भुवः स्वः' की उत्पत्ति हुई। प्रजापति ने व्याहृतियों को भी तपाया, जिससे क्रमशः अकार, उकार एवं मकार की भी उत्पत्ति हुई, जिसका संयुक्त रूप 'ओंकार' है। ओम् वह अक्षर है, जो तपता है अर्थात् वह सूर्य है। ओंकार की द्वितीय स्वर मात्रा से वायु की उत्पति हुई। विश्व सृष्टि व्यवस्था को संचालित करने के लिए प्रजापति ने ऋतुओं एवं संवत्सरों की

---

[३६] देवा चैवासुरा च उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे................. तेऽतिमानेनैव पराबभूवुः। शत० ब्रा० ११/१/८/१

[३७] तां देवाः असुरेभ्योऽन्तरायंस्ताँ स्वीकृत्य......... तेऽसुरा हेऽलयः इति वदन्तः पराबभूवुः॥ वही, ३/२/१/२३

सृष्टि की। मुख्यतः तीन सौ साठ दिन, बारह मास एवं छः ऋतुओं का संयोग ही संवत्सर कहलाता है। विश्व सृष्टि प्रक्रिया में वर्षा के सृजन की व्यवस्था पृथिवी पर अन्नादि के उत्पादन के लिए ही हुई थी, क्योंकि अन्न ही समस्त जीवों की सृष्टि का मूलाधार है। यही वर्षा पृथिवी पर जल के स्रोत के रूप में जीवन का आधार है। कहा भी जाता है कि ''बिन पानी सब सून''। अर्थात् जल ही जीवन है। वर्षा द्वारा जो जल पृथिवी पर गिरता है, वही नदी एवं महासमुद्र का रूप धारण कर इस पृथिवी को जल से परिपूर्ण कर देता है। अतः पृथिवी पर वृष्टि की सृष्टि के साथ ही साथ नदी एवं समुद्रादि का सृजन भी प्रजापति के द्वारा ही हुआ। दैवीय सृष्टि प्रक्रिया के सन्दर्भ में प्रजापति से ही आदित्य, चन्द्रमा, विष्णु, अग्नि, वसु, रुद्र एवं इन्द्रादि सहित समस्त देवों एवं असुरों की सृष्टि भी प्रजापति ने ही की। यह देव एवं असुर प्रजापति के ही पुत्र हैं, इसीलिए इनके लिए 'प्राजापत्य' शब्द भी प्रयुक्त होता है। असुर पाताल लोक एवं देवता देवलोक के निवासी माने जाते हैं। प्रजापति ने ऊर्ध्व प्राण से देवताओं एवं निम्न प्राण से असुरों की सृष्टि की। इस प्रकार अन्ततः कह सकते हैं कि देवों सहित यह समस्त सृष्टि वेदात्मिका पराविद्या अर्थात् त्रयीविद्या से ही सृष्ट होती है।

ब्राह्मण ग्रन्थों का परिचय



गुरुकुल प्रभात आश्रम, (टीकरी) भोलाझाल, मेरठ